CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

रयणसार

कुन्दकुन्दाचार्य

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

3906

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

आचार्य कुन्दकुन्द

रयणसार

3906
3906

श्री गोमटेश्वर (श्रमणवेलगोल, कर्नाटक) सहस्राब्द
महामस्तकाभिषेक-१९८१ ई. के शुभ-स्वस्तिकर
अवसर पर प्रकाशित

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

वाचना-प्रमुख : स्वस्ति श्री चारुकीर्ति
संपादन : बलभद्र जैन

आवरण : संतोष जड़िया

© श्री वी. नि. ग्रं. प्र. स., इन्दौर

तृतीय आवृत्ति, फरवरी १९८०

मूल्य : पांच रुपये

प्रकाशन/प्राप्ति-स्थान :
श्री वीर निर्वाण ग्रन्थ प्रकाशन समिति
४८, सीतला माता बाजार, इन्दौर ४५२००२

मुद्रण : नई दुनिया प्रेस, इन्दौर

रयणसार : आचार्य कुन्दकुन्द
Rayansar : Acharya Kundkund
Religion and Philosophy 1979

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

यह कृति

आचार्य कुन्दकुन्द की कृतियों में 'रयणसार' का अपना आध्यात्मिक महत्त्व है। यह स्व-पर-विज्ञान का खजाना है, अत्यन्त मूल्यवान्, दिशादर्शक। इसमें जहाँ एक ओर मुनि-जीवन की मर्यादाएँ दी गयी हैं वहीं दूसरी ओर गृहस्थों के कर्तव्य-कर्म भी परिभाषित कर दिये गये हैं। मुनि क्या हो, कैसा हो, कैसा न हो; श्रावक क्या हो, कैसा हो, कैसा न हो; दोनों किस तरह एक-दूसरे के पूरक हैं इत्यादि महत्त्वपूर्ण प्रश्नों को तपोधन कुन्दकुन्द ने बड़े तर्कसंगत ढंग से और सरल भाषा में प्रस्तुत किया है। ज्ञान और वैराग्य के सुबद्ध-सहज तटों के बीच सम्यक्त्व की कर्ममल क्षयकारी निर्मल जलधारा कैसी उमगती, निर्बाध चली जाती है, इसका एक परिदृश्य 'रयणसार' में सहज ही प्राप्य है। कहा गया है कायक्लेश मुनित्व नहीं है, मुनित्व है स्व-पर-विज्ञान पर आधारित तपश्चर्या। विलक्षण है सारा वैचारिक आयोजन इस ग्रन्थ का, जो शौरसेनी प्राकृत में लिखा गया हैं। यह छोटे आकार का 'रयणसार' एलाचार्य मुनिश्री विद्यानन्दजी की प्रेरणा से श्री वीर निर्वाण ग्रन्थ प्रकाशन समिति, इन्दौर द्वारा प्रकाशित है। बड़े आकार में भी यह आया है, किन्तु इस आकार में यह कम मूल्य में अधिक लोगों के स्वाध्याय तथा पठन-पाठन के लिए उपलब्ध किया जा रहा है। हमें आशा है कि अपावनताओं के इस युग में प्रस्तुत कृति पावनताओं को प्रकट करने में समर्थ सिद्ध होगी।

—डॉ. नेमीचन्द जैन
सम्पादक 'तीर्थंकर'

२ अक्टूबर १९७९

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

विषयानुक्रमणिका

विषय	गाथा-क्रमांक
सम्यग्दृष्टि	१–१०
श्रावक के कर्त्तव्य	११–१३
आहार-दान	१४–३१
धर्म-द्रव्य के भोग का कुफल	३२–३७
सम्यग्दर्शन	३८–७६
गुरु-भक्ति	७७–८०
आत्म-ज्ञान	८१–९२
मुनि का स्वरूप	९३–१०५
मुनि-चर्या	१०६–११३

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

पात्र-भेद	११४–११५
आत्मरुचि	११६–१२५
बहिरात्मा	१२६–१३२
अन्तरात्मा	१३३–१३९
स्वसमय-परसमय	१४०–१४१
आत्म-स्वरूप की विशुद्धि	१४२–१५२
सम्यक्त्व ही सार है	१५३–१६५
ग्रन्थ-प्रशस्ति	१६६–१६९

□□

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

सार-सहित विषयानुक्रमणिका

विषय — पृष्ठ

गाथा–१

पूर्वार्द्ध में आचार्य ने अपने इष्टदेव वर्धमान जिन का मंगल स्मरण किया है तथा उत्तरार्द्ध में श्रावक और मुनि-धर्म के प्रतिपादक रयणसार ग्रन्थ के कथन की प्रतिज्ञा की है। — १

गाथा– २-१० सम्यग्दृष्टि, मिथ्यादृष्टि

जिनेन्द्रदेव ने जो कहा है और आचार्य-परम्परा से अब तक जो सत्य सुरक्षित रूप से चला आ रहा है, सम्यग्दृष्टि उसी सत्य को कहता है।

मिथ्यादृष्टि जिनेन्द्रदेव के कथन के विरुद्ध अपना मनःकल्पित बोलता है।

सम्यग्दर्शन दो प्रकार का होता है—निश्चय सम्यग्दर्शन और व्यवहार सम्यग्दर्शन।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

सम्यग्दृष्टि ४४ दोषों से रहित सम्यग्दर्शन का पालन करता है। उसे संसार, शरीर और भोगों में आसक्ति नहीं होती; अतः वह सदा सुखी रहता है। ऐसे सम्यग्दर्शन के साथ बाह्य चारित्र भी मुक्ति का कारण है। २–१०

गाथा–११-१३ श्रावक और मुनि के आवश्यक कर्त्तव्य

श्रावक के कर्त्तव्यों में दान और पूजा मुख्य हैं। इसी प्रकार मुनि के कर्त्तव्यों में ध्यान और अध्ययन मुख्य हैं। जो श्रावक दान और पूजा करता है, वह सम्यग्दृष्टि है। ११–१३

गाथा–१४-२२ सुपात्र-दान का फल

सुपात्र-दान सबसे श्रेष्ठ दान है। सुपात्र मुनि होता है। मुनि को आहार देकर ही श्रावक को भोजन करना चाहिये। मुनि की जिन-मुद्रा देखकर भक्तिपूर्वक उसे आहार देना चाहिये। यह सत्पात्र है या नहीं, आहार-दान के समय यह मीमांसा नहीं करनी चाहिये। सुपात्र-दान से इस लोक और परलोक में सुख मिलता है और परम्परा से मोक्ष मिलता है। १४–२२

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

गाथा–२३-२५ आहार-दान में विवेक

मुनियों को आहार देते समय मुनि की प्रकृति, ऋतु, आहार की सुपाच्यता, स्वास्थ्य पर उसका प्रभाव आदि बातों का विवेक रखना चाहिये, जिससे उनके संयम में बाधा न पड़े। २३–२५

गाथा–२६-३१ दान का फल

भक्तिपूर्वक दिये गये दान का फल मोक्ष है और सांसारिक प्रयोजन से दिये दान का फल संसार है। यदि कोई दानी निर्धन है और लोभी सम्पन्न है, तो यह उसके पूर्व कर्मों का फल है। २६–३१

गाथा–३२-३५ धर्म-द्रव्य के भोग का दुष्परिणाम

पूजा, प्रतिष्ठा, दान आदि धार्मिक द्रव्य का जो भोग करता है, वह नरक-गति में जाता है, विकलांग होता है और नाना प्रकार के दुःख भोगता है। ३२–३५

गाथा–३६-३७ धर्म-कार्यों में विघ्न

जो पूजा, दान आदि धर्म-कार्यों में विघ्न डालता है, वह अनेक प्रकार की व्याधियों से पीड़ित रहता है। ३६–३७

 Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

गाथा—३८-३९ कलिकाल का प्रभाव

इस पंचम काल में सम्यग्दर्शन की विशुद्धि, तप, मूलगण आदि में हीनता पायी जाती है। दान, पूजा, शील, चारित्र न पालने वाले दुर्गति में जाते हैं। ३८—३९

गाथा—४०-४५ सम्यक्त्व से रहित जीव

जिसे हेय-उपादेय, तत्त्व-अतत्त्व, हित-अहित, सत्य-असत्य की पहचान नहीं, लौकिक जनों की अधिक संगति करने वाला, अधिक क्रोधी, दम्भी, चुगलखोर, गाली देने वाला और पशु-पक्षियों की-सी प्रकृति वाला मनुष्य सम्यक्त्व-रहित होता है। ४०—४५

गाथा—४६-५२ सम्यग्दर्शन और मिथ्यात्व

रत्नत्रय में सम्यग्दर्शन उत्कृष्ट है। धर्म और तत्त्व को सम्यग्दर्शन ही पहचानता है। मिथ्यादृष्टि एक क्षण को भी आत्मस्वभाव का चिन्तन नहीं करता, निरन्तर पाप का ही चिन्तन करता रहता है। वह मोहासव पीकर हेय-उपादेय को भी नहीं जानता। ४६—५२

गाथा—५३ सम्यग्दृष्टि और मिथ्यादृष्टि में अन्तर

सम्यग्दृष्टि ज्ञान और वैराग्य में समय बिताता है, जबकि मिथ्यादृष्टि आकांक्षा और आलस्य में समय बिताता है। ५३

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

गाथा–५४-५६ अवसर्पिणी काल का प्रभाव

इस अवसर्पिणी काल में भरत क्षेत्र में पापी अधिक हैं, सम्यग्दृष्टि दुर्लभ हैं; किन्तु धर्मध्यान होता है। ५४–५६

गाथा–५७-६३ शुभाशुभ भाव

हिंसा, क्रोध, आर्त-रौद्र ध्यान आदि अशुभ कार्यों में रुचि, वर्तन अशुभ भाव हैं; अनुप्रेक्षा, दया, रत्नत्रय स्वरूप आदि शुभ कार्यों के भाव, रुचि यह शुभ भाव है। अशुभ भाव से नरकादि निद्यगति और शुभ भावों से स्वर्गादि गति और सुख मिलता है। मोह नष्ट करने से मोक्ष मिलता है। ५७–६१

गाथा–६४-६६ बहिरात्मा

बहिरात्मा बाह्य लिंग धारण करता है; व्रत, चारित्र आदि बाह्य चारित्र का भी कठोर पालन करता है, किन्तु उसके जन्म-मरण का नाश नहीं होता, क्योंकि वह मिथ्यात्व नहीं छोड़ता। ६२–६४

गाथा–६७-६९ कर्म-नाश का उपाय

उपशम भाव से संयम होता है। मात्र ज्ञान से कर्मों का नाश नहीं होता, सम्यक्त्वपूर्वक चारित्र से कर्मों का नाश होता है। ६५–६७

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

गाथा—७०-७३ ज्ञानी और अज्ञानी

विषय-कषायों से विरक्त अज्ञानी की अपेक्षा कषायरहित, किन्तु विषयासक्त ज्ञानी श्रेष्ठ है। विषयासक्त अज्ञानी को बाद मे फल मिलता है। वैराग्यरहित त्याग भी व्यर्थ है। ६८—७१

गाथा—७४-७६ रत्नत्रय

सुपात्र-दान और विषयों के त्याग का फल समान है। सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान, सम्यक् चारित्र-रूपी मंत्र से लोभ-रूपी सर्प को वश में किया जाता है। ७२—७४

गाथा—७७-८० गुरु-भक्ति

गुरु-भक्ति से हीन शिष्य दुर्गति का पात्र होता है। उसके व्रत, तप, चारित्र निष्फल हैं। ७५—७८

गाथा—८१-८७ आत्म-ज्ञान

अज्ञानी आत्म-ज्ञान के बिना इन्द्रिय-सुखों को ही सुख मानता है। आत्म-रुचि और आत्म-ज्ञान के बिना व्रत, तप, मुनि-लिंग सब व्यर्थ हैं। जब तक आत्मा को नहीं जाना, तभी तक दुःख है। ७९—८५

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

गाथा–८८ परिग्रही साधु

परिग्रही साधु कायक्लेश उठाते हुए ही मरता है। ८६

गाथा–८९-९२ ज्ञानाभ्यास

ज्ञानाभ्यास से स्व-पर की पहचान और इन्द्रियों का निग्रह होता है। ज्ञान ही धर्मध्यान है। शास्त्र-ज्ञान के बिना तप मिथ्या है। ८७–९०

गाथा–९३-९६ मुनि का स्वरूप

मुनि तत्त्व-विचार में लीन रहता है, धर्मकथा करता है, विकथाओं से दूर रहता है, शुभ ध्यान और अध्ययन में निरत रहता है और वह योगी होता है। ९१–९४

गाथा–९७-९८ मिथ्यात्व से हानि

मिथ्यात्व-युक्त तप से मोक्ष-सुख नहीं मिलता। रागी को आत्म-दर्शन नहीं होता। ९५–९६

गाथा–९९-१०६ सम्यक्त्व-हीन साधु

असंयमी, सम्यक्त्व-हीन, आरम्भ-परिग्रह में आसक्त, संघ-विरोधी, स्वच्छन्द-विहारी, ज्योतिष-वैद्यक और मन्त्र-शास्त्र से आजीविका

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

चलाने वाले, झाड़-फूंक करने वाले, लोकव्यवहार में रत, आत्म-प्रशंसक ऐसे साधु सम्यक्त्व-रहित हैं। ९७–१०४

गाथा–१०७-११३ मुनि-चर्या और आहार का उद्देश्य

साधु मुनि-चर्या के पाँच भेदों को जानकर ज्ञान, ध्यान और संयम की वृद्धि के लिए आहार शुद्ध आहार ग्रहण करता है, शरीर-पुष्टि के लिए नहीं। वह मलिन परिणामों से आहार नहीं लेता। १०५–११२

गाथा–११४-११८ सत्पात्र के लक्षण और भेद

अविरत सम्यग्दृष्टि, श्रावक, महाव्रती मुनि, आगम में रुचि रखने वाले, तत्त्व-विचारक आदि अनेक प्रकार के पात्र (सत्पात्र) होते हैं। इनमें मुनि सर्वश्रेष्ठ सत्पात्र होते हैं। मुनियों में गुणों की वृद्धि के साथ पात्रता भी बढ़ती जाती है। जो सत्पात्र को दान देता है, वह मोक्ष-मार्ग में रत है। ११३–११६

गाथा–११९-१२१ सम्यक्त्व से रहित चारित्र

आत्मा के ज्ञान से विहीन, सम्यक्त्व-हीन और रत्नत्रय के निश्चय और व्यवहार स्वरूप को न जानने वाले का ज्ञान, तप, चारित्र सब संसार के कारण हैं। ११८–१२०

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

गाथा–१२२-१२५ आत्म-रुचि से निर्वाण

सांसारिक चाह और रागादि विभाव-भाव तथा विषयों से विरक्त एवं आत्म-रुचि वाले मुनि को निर्वाण होता है। १२१–१२४

गाथा–१२६-१३२ बहिरात्मा

इन्द्रिय-विषयों में आसक्त और उनमें सुख मानने वाला तथा पर को स्व मानने वाला बहिरात्मा है। १२५–१३१

गाथा–१३३-१३६ अन्तरात्मा

आत्मा को देहादि से भिन्न निजस्वरूप मानने वाला अन्तरात्मा होता है। अन्तरात्मा बनकर परमात्म-पद की भावना करनी चाहिये। १३२–१३५

गाथा–१३७-१३८ अन्तरात्मा और परमात्मा के भाव

बहिरात्मा के वस्तुस्वरूप-सम्बन्धी भाव दुःख के कारण होते हैं और अन्तरात्मा के वस्तुस्वरूप-सम्बन्धी भाव मोक्ष और प्रशस्त पुण्य के कारण होते हैं। १३६–१३७

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

गाथा–१३९-१४१ स्वसमय, परसमय

अन्तरात्मा और बहिरात्मा परसमय हैं, परमात्मा स्व समय है। गुणस्थानों की अपेक्षा तीसरे गुणस्थान तक बहिरात्मा, चौथे से बारहवें गुणस्थान तक अन्तरात्मा और तेरहवें-चौदहवें गुणस्थान वाले परमात्मा हैं। १३८–१४०

गाथा–१४२-१४५ मोक्ष-मार्ग का नेता

तीन शल्य आदि दोषों से रहित, रत्नत्रयादि गुणों से युक्त, शुद्धोपयोगी और जिनलिंगधारी मुनि ही मोक्ष-मार्ग का नेता होता है। १४१–१४४

गाथा–१४६-१४९ सम्यक्त्व का माहात्म्य

सम्यक्त्व जन्म, जरा, मरण का नाश करता है। मुनि सम्यक्त्व की ही साधना करते हैं। अरहन्त में सम्यक्त्व गुण प्रधान है; किन्तु पंचम काल के प्रभाव से उपशम सम्यक्त्व नष्ट हो जाता है। १४५–१४८

गाथा–१५० श्रावक की क्रियाएँ

श्रावक की ५३ क्रियाएँ होती हैं। १४९

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

गाथा–१५१,१५२ ज्ञान मुक्ति का कारण है
ज्ञान से ध्यान, कर्मक्षय और मुक्ति प्राप्त होती है। ज्ञान से तप, संयम, वैराग्य होता है। १५०–१५१
गाथा–१५३-१५६ सम्यक्त्व से सुख
सम्यक्त्व न होने से दुःख और संसार-परिभ्रमण होता है। सम्यक्त्व से सुख मिलता है। सम्यक्त्व के बिना ज्ञान और क्रिया संसार के कारण हैं। १५२–१५५
गाथा–१५७,१५८ ममकार से दुःख
जब तक वस्तुओं में ममकार है, तभी तक दुःख है। १५५–१५६
गाथा–१५९ निर्मल आत्मा समय है
निर्मल आत्मा ही समय है। १५७
गाथा–१६०-१६४ सम्यक्त्व से कर्म-क्षय
सम्यक्त्व से कर्मों का क्षय होता है और यथेच्छ सुख मिलता है। आत्मा के शुद्ध स्वरूप और धर्मध्यान का अभ्यास करने से परमात्मा के ध्यान में अवस्थिति होती है और कर्म-क्षय होता है। १५८–१६२
गाथा–१६५-१६७ ग्रन्थ-प्रशस्ति १६३–१६५

□□

 Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

सिरि कुन्दकुन्दाइरिय

रयणसार

अह मंगलायरणं–

णमिदूण वड्ढमाणं, परमप्पाणं जिणं तिसुद्धेण ।
वोंच्छामि* रयणसारं, सायारणयारधम्मीणं ॥१॥

अन्वयार्थ – (**परमप्पाणं**) परमात्मा (**वड्ढमाणं**) वर्धमान (**जिणं**) जिन को (**तिसुद्धेण**) मन, वचन और काय की शुद्धिपूर्वक (**णमिदूण**) नमस्कार करके (**सायारणयारधम्मीणं**) सागार/गृहस्थ/ और अनगार/साधु धर्म वालों का–व्याख्यान करने वाला (**रयणसारं**) रयणसार नामक ग्रन्थ विषय को (**वोंच्छामि**) कहता हूँ ।

अर्थ– मैं परमात्मा (तीर्थंकर) वर्धमान जिन को मन-वचन-काय की त्रिशुद्धि-पूर्वक नमस्कार करके सागार (गृहस्थ) और अनगार (साधु) धर्म का व्याख्यान करने वाला 'रयणसार' कहता हूँ/की रचना करता हूँ ।

* यहाँ वोंच्छामि पद से आचार्य का यह अभिप्राय है कि मैं इस ग्रन्थ का वक्ता-मात्र हूँ, कर्त्ता नहीं ।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC-0 In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

सम्यग्दृष्टि की पहचान—

पुव्वं जिणेहि भणिदं, जहट्ठिदं गणहरेहि वित्थरिदं ।
पुव्वाइरियक्कमजं, तं बोॅल्लदि जो हु सद्दिट्ठी ॥२॥

अन्वयार्थ – **(जो)** जो **(हु)** वस्तुतः/निश्चय से **(सद्दिट्ठी)** सम्यग्दृष्टि है—वह **(पुव्वं)** पूर्वकाल में **(जिणेहि)** जिनेन्द्रों ने—जो **(भणिदं)** कहा **(गणहरेहि)** गणधरों ने **(जहट्ठिदं*)** उसी सत्य को **(वित्थरिदं)** विस्तृत किया –विस्तार रूप से बताया– और जो **(पुव्वाइरियक्कमजं)** पूर्वाचार्यों के क्रम से/परम्परा से प्राप्त हुआ **(तं)** उसी को **(बोॅल्लदि)** कहता है ।

अर्थ– जो निश्चय से सम्यग्दृष्टि है, (वह) पूर्वकाल में जिनेन्द्रों ने जो कहा, गणधरों ने उसी सत्य को विस्तार रूप से बताया और पूर्वाचार्यों की परम्परा से जो प्राप्त हुआ, उसी को कहता है ।

---

*जहट्ठिदं—वास्तविक, सत्य—पा. स. म., पृ. ३५२

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

मिथ्यादृष्टि की पहचान—

मदिसुदणाणबलेण दु, सच्छंदं बोॅल्लदे जिणुद्दिट्ठं ।
जो सो होदि कुदिट्ठी, ण होदि जिणमग्गलग्गरवो ।।३।।

अन्वयार्थ – (जो) जो व्यक्ति (मदिसुदणाणबलेण दु) मतिज्ञान और श्रुतज्ञान के बल से (सच्छंदं) स्वच्छन्द—मन:कल्पित (बोॅल्लदे) बोलता है (सो) वह व्यक्ति (कुदिट्ठी) मिथ्यादृष्टि (होदि) होता है—वह (जिणमग्गलग्गरवो) जिनेन्द्रदेव के मार्ग में आरूढ़ व्यक्ति का वचन (ण) नहीं (होदि) है।

अर्थ– जो व्यक्ति मतिज्ञान और श्रुतज्ञान के बल से स्वच्छन्द (मन:कल्पित) बोलता है, वह व्यक्ति मिथ्यादृष्टि है। वह जिनेन्द्रदेव के मार्ग में आरूढ़ व्यक्ति का वचन नहीं है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0 In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

सम्यग्दर्शन के भेद–

सम्मत्तरयणसारं, मोॅक्खमहारुक्खमूलमिदि भणिदं ।
तं जाणिज्जदि णिच्छय-ववहारसरूवदो भेयं ।।४।।

अन्वयार्थ – (**सम्मत्तरयणसारं**) सम्यक्त्व रत्न ही सारभूत है– वह (**मोॅक्खमहारुक्खमूलं**) मोक्ष रूपी महान् वृक्ष का मूल है (**इदि**) ऐसा (**भणिदं**) कहा गया है (**तं**) वह (**णिच्छयववहारसरूवदो**) निश्चय और व्यवहार रूप से (**भेयं**) दो भेद वाला (**जाणिज्जदि***) जाना जाता है ।

अर्थ– सम्यक्त्व (सम्यग्दर्शन) रत्न ही सारभूत है। वह मोक्षरूपी महान् वृक्ष का मूल है, ऐसा कहा गया है। वह निश्चय और व्यवहार रूप से (दो) भेद वाला जाना जाता है (उसके निश्चय सम्यग्दर्शन और व्यवहार सम्यग्दर्शन ये दो भेद हैं)।

---

* प्राकृत भाषाओं का व्याकरण, रिचार्ड पिशल, पृ. ७७२

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

सम्यग्दृष्टि का स्वरूप–

भयवसणमलविवज्जिद–संसारसरीरभोगणिव्विण्णो ।
अट्ठगुणंगसमग्गो, दंसणसुद्धो हु पंचगुरुभत्तो ॥५॥

(उग्गाहा)

अन्वयार्थ – (**दंसणसुद्धो**) निर्दोष सम्यग्दर्शन का धारक (**हु**) निश्चय ही (**भयवसणमलविवज्जिद**) भय, व्यसन और मलों से रहित होता है (**संसारसरीरभोगणिव्विण्णो**) संसार, शरीर और भोगों से विरक्त होता है (**अट्ठगुणंगसमग्गो**) अष्टांग गुणों से युक्त होता है (**पंचगुरुभत्तो**) पंच गुरु-परमेष्ठी का भक्त होता है।

अर्थ– निर्दोष सम्यग्दर्शन का धारक निश्चय ही (सप्त) भय, (सप्त) व्यसन और (पच्चीस) मलों (दोषों) से रहित, संसार, शरीर और भोगों से विरक्त, अष्टांग (निःशंकितादि) गुणों से युक्त और पंच गुरु (परमेष्ठी) का भक्त होता है।

---

१. वसण–व्यसन—पा. स. म., पृ. ७५२
२. समग्ग–युक्त, सहित—पा. स. म., पृ. ८६५

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

सम्यग्दृष्टि दुःखी नहीं होता–

णियसुद्धप्पणुरत्तो, बहिरप्पावत्थवज्जिदो णाणी ।
जिण-मुणि-धम्मं मण्णदि, गददुक्खो होदि सद्दिट्ठी ॥६॥

अन्वयार्थ – (**णियसुद्धप्पणुरत्तो**) निज शुद्ध आत्मा में अनुरक्त रहता है (**बहिरप्पावत्थवज्जिदो**) वहिरात्मा की दशा से रहित–पराङ्मुख होता है (**णाणी**) आत्मज्ञानी होता है (**जिण-मुणि-धम्मं**) जिनेन्द्रदेव, मुनि और धर्म को (**मण्णदि**) मानता है–ऐसा (**सद्दिट्ठी**) सम्यग्दृष्टि (**गददुक्खो**) दुःखों से रहित (**होदि**) होता है ।

अर्थ– (जो) निज शुद्ध आत्मा में अनुरक्त (रहता है), बहिरात्मा की दशा से रहित (पराङ्मुख) होता है, आत्मज्ञानी (होता है और) जिनेन्द्रदेव, मुनि और धर्म को मानता है, ऐसा सम्यग्दृष्टि दुःखों से रहित होता है ।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

सम्यग्दृष्टि चवालीस दोषों से रहित होता है–

मदमूढमणायदणं, संकादिवसणभयमवीयारं ।
जेंसि चउवालेसे, ण संति ते होंति सद्दिट्ठी ।।७।।

अन्वयार्थ – (**जेंसि**) जिनके (**मदमूढमणायदणं**) मद, मूढ़ता और अनायतन (**संकादिवसणभयं**) शंकादि दोष, व्यसन और भय (**अदीयारं**) अतिचार (**चउवालेसे**) ये चौवालीस दोष (**ण**) नहीं (**संति**) होते हैं (**ते**) वे (**सद्दिट्ठी**) सम्यग्दृष्टि (**होंति**) होते हैं।

अर्थ– जिनके (आठ) मद (तीन) मूढ़ता (छह) अनायतन, शंकादि (आठ) दोष, (सात) व्यसन, (सात) भय और (पाँच) अतिचार—ये चौवालीस दोष नहीं होते हैं, वे सम्यग्दृष्टि होते हैं ।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0-In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

श्रावक के सतत्तर गुण–

उहयगुणवसणभयमलवेरग्गादीयार–भत्तिविग्घं वा ।
एदे सत्तत्तरिया, दंसणसावयगुणा भणिदा ।।८।।

(चपला)

अन्वयार्थ – (उहयगुण) दोनों गुण–आठ मूलगुण, बारह उत्तर गुण (वसणभयमलवेरग्गादीयार) सात व्यसन, सात भय, पच्चीस मल-दोष से रहित, वैराग्य युक्त, अतिचार रहित (वा) और (भत्तिविग्घं) विघ्न रहित भक्ति (एदे) ये (सत्तत्तरिया) सतत्तर (दंसणसावयगुणा) दर्शन-सम्यग्दृष्टि श्रावक के गुण (भणिदा) कहे गये हैं।

अर्थ–दोनों गुण (आठ मूलगुण, बारह उत्तरगुण), सात व्यसन, सात भय, पच्चीस मल (दोष से रहित), वैराग्य युक्त, (पांच) अतिचार रहित और निर्विघ्न भक्ति-भावना–ये सम्यग्दृष्टि श्रावक के सतत्तर गुण कहे गये हैं।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

सम्यग्दृष्टि को मोक्ष-सुख मिलता है–

देवगुरुसमयभत्ता, संसारसरीरभोगपरिचत्ता ।
रयणत्तयसंजुत्ता, ते मणुया सिवसुहं पत्ता ।।६।।

अन्वयार्थ – जो मनुष्य –(**देवगुरुसमयभत्ता**) देव, गुरु और शास्त्र के भक्त होते हैं; (**संसारसरीरभोगपरिचत्ता**) संसार, शरीर और भोगों के परित्यागी होते हैं; (**रयणत्तयसंजुत्ता**) रत्नत्रय से संयुक्त होते हैं (**ते**) वे (**मणुया**) मनुष्य (**सिवसुहं**) मोक्ष-सुख को (**पत्ता**) प्राप्त करते हैं ।

अर्थ– (जो मनुष्य) देव, गुरु और शास्त्र के भक्त होते हैं, संसार, शरीर और भोगों के परित्यागी होते हैं और (सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान, सम्यक्चारित्र रूप) रत्नत्रय से संयुक्त होते हैं, वे मोक्ष-सुख को प्राप्त करते हैं ।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

सम्यग्दर्शन-सहित बाह्य चारित्र मोक्ष का कारण है–

दाणं पूया सीलं, उववासं बहुविहं पि खवणं पि।
सम्मजुदं मोँक्खसुहं, सम्मविणा दीहसंसारं ॥१०॥

अन्वयार्थ – (**सम्मजुदं**) सम्यग्दर्शन से युक्त (**दाणं**) दान (**पूया**) पूजा (**सीलं**) शील (**बहुविहं पि**) अनेक प्रकार के (**उववासं**) उपवास (**खवणं पि**) कर्म-क्षय के कारणभूत व्रत आदि (**मोँक्खसुहं**) मोक्ष-सुख के कारण हैं–और (**सम्मविणा**) सम्यग्दर्शन के विना–ये ही (**दीहसंसारं**) दीर्घसंसार के कारण हैं।

अर्थ– सम्यग्दर्शन से युक्त दान, पूजा, शील, अनेक प्रकार के उपवास तथा कर्म-क्षय के कारणभूत व्रत आदि मोक्ष-सुख के कारण हैं और सम्यग्दर्शन के विना ये ही दीर्घ संसार के कारण हैं।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

श्रावक और मुनि के कर्त्तव्य–

दाणं पूया मुक्खं, सावयधम्मे ण सावया तेण विणा ।
झाणाज्झयणं मुक्खं, जदिधम्मे तं विणा तहा सो वि ॥११॥

(सिंहनी)

अन्वयार्थ – (**सावयधम्मे**) श्रावक धर्म में (**दाणं**) दान–और (**पूया**) पूजा (**मुक्खं**) मुख्य-कर्त्तव्य हैं (**तेण**) उसके (**विणा**) बिना (**सावया**) श्रावक (**ण**) नहीं होता है (**जदिधम्मे**) मुनि-धर्म में (**झाणाज्झयणं**) ध्यान और अध्ययन (**मुक्खं**) मुख्य कर्त्तव्य हैं (**तं**) उस ध्यान, अध्ययन के (**विणा**) बिना (**सो वि**) वह मुनि-धर्म भी (**तहा**) वैसा ही-व्यर्थ है ।

अर्थ– श्रावक-धर्म में दान और पूजा मुख्य (कर्त्तव्य) हैं । उसके (दान और पूजा के) बिना श्रावक नहीं होता (कहलाता) । मुनि-धर्म में ध्यान और अध्ययन मुख्य (कर्त्तव्य) हैं । उस (ध्यान, अध्ययन) के बिना वह मुनि-धर्म भी वैसा ही (व्यर्थ) है ।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0 In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

बहिरात्मा पतंगे के समान है—

दाण ण धम्म ण चाग ण, भोग ण बहिरप्प जो पयंगो सो ।
लोहकसायग्गिमुहे, पडिदो मरिदो ण संदेहो ॥१२॥

अन्वयार्थ – (**जो**) जो श्रावक (**दाण**) दान (**ण**) नहीं देता (**धम्म**) धर्म का (**ण**) पालन नहीं करता (**चाग**) त्याग (**ण**) नहीं करता (**भोग**) न्यायपूर्वक भोग (**ण**) नहीं करता (**बहिरप्प**) वह वहिरात्मा है (**सो**) वह (**पयंगो**) ऐसा पतंगा है—जो (**लोह-कसायग्गिमुहे**) लोभकषायरूपी अग्नि के मुख में (**पडिदो**) पड़ा हुआ (**मरिदो**) मर जाता है (**संदेहो**) इसमें सन्देह (**ण**) नहीं है।

अर्थ— जो श्रावक दान नहीं देता, धर्म का पालन नहीं करता, त्याग नहीं करता, न्यायपूर्वक भोग नहीं करता, वह बहिरात्मा है। वह ऐसा पतंगा है, जो लोभकषायरूपी अग्नि के मुख में पड़ा हुआ मर जाता है, इसमें सन्देह नहीं है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

पूजा, दान करने वाला सम्यग्दृष्टि है–

जिणपूया मुणिदाणं, करेदि जो देदि सत्तिरूवेण ।
सम्मादिट्ठी सावय-धम्मी सो होदि मोॅक्खमग्गरदो ।।१३।।

(उग्गाहा)

अन्वयार्थ – (**जो**) जो (**जिणपूया**) जिनदेव की पूजा (**करेदि***) करता है–और (**सत्तिरूवेण**) शक्ति के अनुसार (**मुणिदाणं**) मुनियों को दान (**देदि**) देता है (**सो**) वह (**सम्मादिट्ठी**) सम्यग्दृष्टि (**धम्मी**) धर्मात्मा (**सावय**) श्रावक है–वह (**मोॅक्खमग्गरदो**) मोक्ष-मार्ग में रत (**होदि**) है।

अर्थ– जो जिनदेव की पूजा करता है और शक्ति के अनुसार मुनियों को दान देता है, वह सम्यग्दृष्टि धर्मात्मा श्रावक है। वह मोक्ष-मार्ग में रत है।

---

* करेदि—प्रा. भा. व्या., पृ. ३८, ६९७

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0 In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

पूजा और दान का फल–

पूयफलेण तिलोक्के सुरपुज्जो हवदि सुद्धमणो ।
दाणफलेण तिलोए, सारसुहं भुञ्जदे णियदं ॥१४॥

(गाहू)

अन्वयार्थ – (**सुद्धमणो**) शुद्ध मन वाला श्रावक (**पूयफलेण**) पूजा के फल से (**तिलोक्के**) तीनों लोकों में (**सुरपुज्जो**) देवों से पूज्य (**हवदि**) होता है–और (**दाणफलेण**) दान के फल से (**तिलोए**) तीनों लोकों में (**णियदं**) निश्चय से (**सारसुहं**) सारभूत सुख को (**भुञ्जदे**) भोगता है।

अर्थ– शुद्ध मन वाला श्रावक पूजा के फल से तीनों लोकों में देवों से पूज्य होता है और दान के फल से तीनों लोकों में निश्चय से सारभूत सुख को भोगता है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

जिन-मुद्रा देखकर आहार-दान का उपदेश–

दाणं भोयणमेत्तं, दिण्णदि धण्णो हवेदि सायारो ।
पत्तापत्तविसेसं, सद्दंसणे किं वियारेण ।।१५।।

अन्वयार्थ – यदि (**सायारो**) श्रावक (**भोयणमेत्तं**) भोजन-मात्र (**दाणं**) दान (**दिण्णदि**) देता है–तो वह (**धण्णो**) धन्य (**हवेदि**) हो जाता है (**सद्दंसणे**) जिन-लिंग को देखकर (**पत्तापत्तविसेसं**) पात्रापात्र विशेष के (**वियारेण**) विचार से–विकल्प करने से (**किं**) क्या लाभ है ?

अर्थ– (यदि) श्रावक (मुनि को) भोजन-मात्र दान देता है तो वह धन्य हो जाता है। (एक जिन-लिंग को) देखकर पात्रविशेष या अपात्रविशेष का विचार (विकल्प) करने से क्या (लाभ है) ?

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0 In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

सुपात्र-दान से स्वर्ग, मोक्ष की प्राप्ति–

दिण्णदि सुपत्तदाणं, विसेसदो होदि भोगसग्गमही ।
णिव्वाणसुहं कमसो, णिद्दिट्ठं जिणवरिंदेहिं ।।१६।।

अन्वयार्थ – यदि (**सुपत्तदाणं**) सुपात्र-दान (**दिण्णदि**) दिया जाता है–तो (**विसेसदो**) विशेष रूप से (**भोगसग्गमही**) भोगभूमि और स्वर्ग (**होदि**) प्राप्त होता है (**कमसो**) और क्रमशः (**णिव्वाणसुहं**) निर्वाण-सुख मिलता है (**जिणवरिंदेहिं**) जिनेन्द्रों ने ऐसा (**णिद्दिट्ठं**) कहा है ।

अर्थ– (यदि) सुपात्र को दान दिया जाता है (तो उसके फलस्वरूप) विशेष रूप से भोगभूमि और स्वर्ग प्राप्त होता है और क्रमशः निर्वाण-सुख मिलता है, ऐसा जिनेन्द्रदेवों ने कहा है ।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

सुपात्र-दान का उत्तम फल–

खेत्तविसेसे काले, वविद सुवीयं फलं जहा विउलं ।
होदि तहा तं जाणह, पत्तविसेसेसु दाणफलं ॥१७॥

अन्वयार्थ – (**जहा**) जैसे (**खेत्तविसेसे**) विशेष–उत्तम क्षेत्र में (**काले**) उपयुक्त काल में (**वविद**) बोया हुआ (**सुवीयं**) उत्तम बीज (**विउलं**) विपुल (**फलं**) फलवाला (**होदि**) होता है (**तहा**) उसी प्रकार (**पत्तविसेसेसु**) विशेष–उत्तम पात्रों को दिये (**तं**) उस (**दाणफलं**) दान के फल को (**जाणह***) जानो।

अर्थ– जैसे उत्तम क्षेत्र में, उपयुक्त काल में बोये हुए उत्तम बीज का विपुल फल मिलता है, उसी प्रकार उत्तम पात्रों को दिये उस दान के फल को जानो।

---

* जाणह—आज्ञावाचक —प्रा. भा. व्या., पृ. ७४५

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

सप्त क्षेत्रों में दिये दान का फल–

इह णियसुवित्तवीयं, जो ववदि जिणुत्तसत्तखेत्तेसु ।
सो तिहुवणरज्जफलं, भुञ्जदि कल्लाणपंचफलं ।।१८।।

अन्वयार्थ – (**इह**) इस लोक में (**जो**) जो पुरुष (**जिणुत्तसत्त-खेत्तेसु**) जिनेन्द्रदेव द्वारा कथित सप्त क्षेत्रों में (**णियसुवित्तवीयं**) अपने–नीतिपूर्वक उपार्जित–श्रेष्ठ धनरूपी बीज को (**ववदि**) बोता है (**सो**) वह (**तिहुवणरज्जफलं**) त्रिभुवन के राज्यरूपी फल को– और (**कल्लाणपंचफलं**) पंच कल्याणक रूप फल को (**भुञ्जदि**) भोगता है।

अर्थ– इस लोक में जो पुरुष जिनेन्द्रदेव द्वारा कथित सप्त क्षेत्रों में अपने (नीतिपूर्वक उपार्जित) श्रेष्ठ धनरूपी बीज को बोता है, वह त्रिभुवन के राज्यरूपी फल को और पंचकल्याणक रूप फल को भोगता है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

सुपात्र-दान का फल—

मादु-पिदु-पुत्त-मित्तं, कलत्त-धण-धण्ण-वत्थु-वाहण-विहवं ।
संसारसारसोंक्खं, सव्वं जाणह सुपत्तदाणफलं ।।१९।।

(सिहनी)

अन्वयार्थ – (**मादु**) माता (**पिदु**) पिता (**पुत्त**) पुत्र (**मित्तं**) मित्र (**कलत्त**) स्त्री (**धण**) गाय आदि पशु (**धण्ण**) अनाज (**वत्थु**) मकान (**वाहण**) वाहन (**विहवं**) वैभव (**संसारसार-सोंक्खं**) संसार के उत्तम सुख (**सव्वं**) यह सब (**सुपत्तदाणफलं**) सुपात्र-दान का फल (**जाणह**) जानो ।

अर्थ– माता, पिता, पुत्र, मित्र, स्त्री, गाय आदि पशु, अनाज, मकान, वाहन, वैभव और संसार के उत्तम सुख—यह सब सुपात्र-दान का फल जानो ।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

सुपात्र-दान का फल—

सत्तंगरज्ज-णवणिहि-भंडार-सडंगबल-चउद्दस रयणं ।
छण्णवदि सहस्सित्थी, विहवं जाणह सुपत्तदाणफलं ॥२०॥ (सिंहनी)

अन्वयार्थ — (**सत्तंगरज्ज**) सप्तांग राज्य (**णवणिहि**) नवनिधि (**भंडार**) कोष (**सडंग बल**) छह प्रकार की सेना (**चउद्दसरयणं**) चौदह रत्न (**छण्णवदि सहस्सित्थी**) छियानवे हजार स्त्रियाँ—और (**विहवं**) वैभव—यह सब (**सुपत्तदाणफलं**) सुपात्र-दान का फल (**जाणह**) जानो ।

अर्थ— सप्ताङ्ग राज्य, नवनिधि, कोष, छह प्रकार की सेना, चौदह रत्न, छियानवे हजार स्त्रियाँ और वैभव—यह सब सुपात्र-दान का फल जानो ।

विशेष—सप्ताङ्ग राज्य—राजा, मन्त्री, मित्र, को र, देश, किला और सेना ।
नवनिधि—काल, महाकाल, नैस्सर्प्य, पद्म, मा व, पिंग, शंख, सर्वरत्न ।
षडंग सेना—हाथी, घोड़ा, रथ, पदाति ।
चौदह रत्न—चक्र, छत्र, असि, मणि, चर्म और काकिणी—ये सात अजीव रत्न हैं । सेनापति, गृहपति, हाथी, घोड़ा, स्त्री, शिलावट और पुरोहित—ये सात सजीव रत्न हैं ।

अपभ्रंश में चउद्दह आता है । जैन महाराष्ट्री और जैन शौरसेनी में चोद्दस और चउद्दस बनता है । —प्रा. भा. व्या., पृ. ६५८

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

सुपात्र-दान का फल–

सुकुल-सुरूव-सुलक्खण-सुमदि-सुसिक्खा-सुसील-सुगुण-सुचरित्तं ।
सयलं सुहाणुभवणं, विहवं जाणह सुपत्तदाणफलं ।।२१।।

(सिंहनी)

अन्वयार्थ – (**सुकुल**) उत्तम कुल (**सुरूव**) उत्तम रूप (**सुलक्खण**) उत्तम लक्षण (**सुमदि**) उत्तम बुद्धि (**सुसिक्खा**) उत्तम शिक्षा (**सुसील**) उत्तम स्वभाव (**सुगुण**) उत्तम गुण (**सुचरित्तं**) उत्तम चरित्र (**सयलं**) सकल (**सुहाणुभवणं**) सुखों का अनुभव–और (**विहवं**) वैभव–यह सब (**सुपत्तदाणफलं**) सुपात्र-दान का फल (**जाणह**) जानो ।

अर्थ– उत्तम कुल, उत्तम रूप, उत्तम लक्षण, उत्तम बुद्धि, उत्तम शिक्षा, उत्तम स्वभाव, उत्तम गुण, उत्तम चरित्र, सकल सुखों का अनुभव और वैभव–(यह सब) सुपात्र-दान का फल जानो ।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

आहार-दान के बाद भोजन करने का उपदेश–

जो मुणिभुत्तवसेसं, भुञ्जदि सो भुञ्जदे जिणुद्दिट्ठं ।
संसारसारसोॅक्खं, कमसो णिव्वाणवरसोॅक्खं ।।२२।।

अन्वयार्थ – (**जो**) जो भव्यजीव (**मुणिभुत्तवसेसं**) मुनि के आहार के पश्चात् अवशिष्ट अन्न को–प्रसाद मानकर (**भुञ्जदि**) खाता है (**सो**) वह (**संसारसारसोॅक्खं**) संसार के सारभूत सुखों को–और (**कमसो**) क्रमशः (**णिव्वाणवरसोॅक्खं**) मोक्ष के उत्तम सुख को (**भुञ्जदे**) भोगता है–ऐसा (**जिणुद्दिट्ठं**) जिनेन्द्रदेव ने कहा है ।

अर्थ– जो (भव्य जीव) मुनि के आहार के पश्चात् अवशिष्ट अन्न को (प्रसाद मानकर) खाता है, वह संसार के सारभूत सुखों को और क्रमशः मोक्ष के उत्तम सुख को भोगता है, ऐसा जिनेन्द्रदेव ने कहा है ।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0 In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

मुनियों के आहार-दान में विवेक—

सोदुण्ह-वाय-पिउलं, सिलेसिम्मं तह परिसमं वाहिं।
कायकिलेसुववासं, जाणिच्चा दिण्णदे दाणं ॥२३॥

अन्वयार्थ – (**सोदुण्ह**) शीत या उष्णकाल (**वाय-पिउलं-सिलेसिम्मं**) मुनि की वात-पित्त या कफ-प्रधान प्रकृति (**परिसमं**) परिश्रम (**तह**) तथा (**वाहिं**) व्याधि (**कायकिलेसं**) कायक्लेश तप—और (**उववासं**) उपवास (**जाणिच्चा***) जानकर (**दाणं**) दान (**दिण्णदे**) दिया जाता है।

अर्थ—शीत या उष्ण (काल-ऋतु), (मुनि की प्रकृति) वात, पित्त या कफ (प्रधान है), (गमनागमन या ध्यानासनों में होने वाले) परिश्रम, रोग, कायक्लेश तप और उपवास (आदि सारी बातों को) जानकर दान दिया जाता है।

विशेष—*मुनियों की प्रकृति और ऋतु के अनुकूल संयमवर्धक आहार देना चाहिए।*

---

* क्त्वा प्रत्यय के स्थान पर कहीं-कहीं च्चा लगता है। –प्रा. भा. व्या., पृ. ८३०

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC-0 In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

मुनि के लिए देय वस्तु में विवेक–

हिदमिदमण्णं पाणं, णिरवज्जोसहिं णिराउलं ठाणं।
सयणासणमुवयरणं, जाणिच्चा देदि मोॅक्खमग्गरदो ।।२४।।

(सिंहनी)

अन्वयार्थ – (मोॅक्खमग्गरदो) मोक्षमार्ग में अनुरक्त व्यक्ति (हिदमिदं) हित और मित (अण्णं) अन्न (पाणं) पान (णिरवज्जोसहिं) निर्दोष औषधि (णिराउलं) निराकुल (ठाणं) स्थान (सयणासणमुवयरणं) शयनोपकरण और आसनोपकरण (जाणिच्चा) आवश्यकता जानकर (देदि) देता है।

अर्थ– मोक्ष-मार्ग में अनुरक्त व्यक्ति (मुनि को) हितकारी और परिमित अन्न-पान, निर्दोष औषधि, निराकुल स्थान, शयनोपकरण और आसनोपकरण (आवश्यकता जानकर) देता है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अणयाराणं वेज्जावच्चं कुज्जा जहेह जाणिच्चा।
गब्भब्भमेव मादा-पिदुच्च णिच्चं तहा णिरालसया ।।२५।।

(गाहिणी)

अन्वयार्थ – (**जहेह**) जैसे इस लोक में (**मादा-पिदुच्च**) माता और पिता (**गब्भब्भमेव**) गर्भस्थित शिशु-का सावधानी से पालन करते हैं (**तहा**) उसी प्रकार (**अणयाराणं**) मुनियों की (**जाणिच्चा**) प्रकृति आदि जानकर (**णिच्चं**) सदा (**णिरालसया**) आलस्य-रहित होकर (**वेज्जावच्चं**) वैयावृत्य (**कुज्जा**) करनी चाहिए।

अर्थ–जैसे इस लोक में माता और पिता गर्भ-स्थित शिशु (का सावधानी से पालन करते हैं), उसी प्रकार मुनियों की (प्रकृति आदि) जानकर सदा आलस्य-रहित होकर वैयावृत्य करनी चाहिए।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

सम्यग्दृष्टि और लोभी पुरुष के दान में अन्तर–

सप्पुरिसाणं दाणं, कप्पतरूणं फलाण सोहा वा ।
लोहीणं दाणं जदि, विमाण सोहा सवं जाणे ।।२६।।

अन्वयार्थ - (**सप्पुरिसाणं**) सत्पुरुषों–सम्यग्दृष्टि का (**दाणं**) दान (**कप्पतरूणं**) कल्पवृक्ष के (**फलाण**) फलों की (**सोहा**) शोभा (**वा**) समान–होता है (**लोहीणं**) लोभी पुरुषों का (**जदि**) जो (**दाणं**) दान है--वह (**विमाण सवं**) अर्थी के शव की (**सोहा**) शोभा के समान है (**जाणे**) ऐसा जानो ।

अर्थ– सत्पुरुषों (सम्यग्दृष्टि) का दान कल्पवृक्ष के फलों की शोभा के समान है और लोभी पुरुषों का जो दान है, वह अर्थी के शव की शोभा के समान है, ऐसा जानो ।

१. वा—अथवा, अवधारण, निश्चय, सादृश्य, समानता, उपमा, पादपूर्ति
—पा. स. म., पृ. ७५५

२. जदि—यदि, जो, अगर —पा. स. म., पृ. ३४१

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

लोभी का दान–

जस-कित्ति-पुण्णलाहे, देदि सुबहुगं पि जत्थ तत्थेव ।
सम्मादिसुगुणभायण, पत्तविसेसं ण जाणंति ।।२७।।

अन्वयार्थ – लोभी पुरुष (**जस-कित्ति-पुण्णलाहे**) यश, कीर्ति और पुण्य-लाभ के लिए (**जत्थ तत्थेव**) यत्रतत्र–कुपात्र आदि को (**सुबहुगं पि**) बहुत (**देदि**) दान देता है–वह (**सम्मादिसुगुणभायण**) सम्यक्त्वादि उत्तम गुणों के आधार (**पत्तविसेसं**) सुपात्र को (**ण जाणंति**) नहीं जानता।

अर्थ– (लोभी पुरुष) यश, कीर्ति और पुण्य-लाभ के लिए यत्रतत्र (कुपात्र आदि को) बहुत दान देता है। वह सम्यक्त्वादि उत्तम गुणों के आधार सुपात्र को नहीं जानता।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

ऐहिक कामना से दिया दान निरर्थक है–

जंतं मंतं तंतं, परिचरिदं पक्खवाद पियवयणं।
पडुच्च पंचमयाले, भरहे दाणं ण किं पि मोक्खस्स ॥२८॥

(उग्गाहा)

अन्वयार्थ – (**पंचमयाले**) इस पंचम काल में (**भरहे**) भरत क्षेत्र में (**जंतं**) यंत्र (**मंतं**) मंत्र (**तंतं**) तंत्र (**परिचरिदं**) सेवा परिचर्या (**पक्खवाद**) पक्षपात (**पियवयणं**) प्रिय वचन–और (**पडुच्च**) प्रतीति के लिए–दिया हुआ (**किं पि**) कोई भी (**दाणं**) दान (**मोक्खमग्गस्स**) मोक्ष-मार्ग का कारण (**ण**) नहीं है।

अर्थ– इस पंचमकाल में भरतक्षेत्र में यंत्र-मंत्र-तंत्र (की प्राप्ति के लिए), सेवा (परिचर्या के लिए), पक्षपात से, प्रियवचन और प्रतीति (मान-प्रतिष्ठा) के लिए दिया हुआ कोई भी दान मोक्ष का कारण नहीं है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0-In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

पूर्वोपार्जित कर्म का फल–

दाणीणं दारिद्दं, लोहीणं किं हवदि महइसरियं।
उहयाणं पुव्वज्जिद कम्मफलं जाव होदि थिरं।।२९।।

अन्वयार्थ – (**दाणीणं**) दानी पुरुषों के (**दारिद्दं**) दरिद्रता और (**लोहीणं**) लोभी पुरुषों के (**महइसरियं**) महान् ऐश्वर्य (**किं**) क्यों (**हवदि**) होता है (**जाव**) जब तक (**उहयाणं**) दोनों के (**पुव्वज्जिद**) पूर्वोपार्जित (**कम्मफलं**) कर्म-फल (**थिरं**) स्थिर–उदय में (**होदि**) रहता है।

अर्थ– दानी पुरुषों के दरिद्रता और लोभी पुरुषों के महान् ऐश्वर्य क्यों होता है (देखा जाता है); जब तक दोनों का पूर्वोपार्जित कर्म-फल स्थिर (उदय में) रहता है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

मुनि-दान से सुख होता है–

धणधण्णादिसमिद्धे, सुहं जहा होदि सव्वजीवाणं।
मुणिदाणादिसमिद्धे, सुहं तहा तं विणा दुक्खं ॥३०॥

अन्वयार्थ – (**जहा**) जैसे (**धणधण्णादिसमिद्धे**) धन-धान्यादि की समृद्धि से (**सव्वजीवाणं**) समस्त जीवों को (**सुहं**) सुख (**होदि**) होता है (**तहा**) उसी प्रकार (**मुणिदाणादिसमिद्धे**) मुनि-दान आदि की समृद्धि से (**सुहं**) सुख होता है (**तं विणा**) उसके बिना (**दुक्खं**) दुःख होता है।

अर्थ– जैसे धन-धान्यादि की समृद्धि से समस्त जीवों को सुख होता है, उसी प्रकार मुनि-दान आदि की समृद्धि से सुख होता है और उसके बिना दुःख होता है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC-0. In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

सुपात्र के बिना दान निष्फल है—

पत्त विणा दाणं च सुपुत्त विणा बहुधणं महाखेत्तं।
चित्त विणा वय-गुण-चारित्तं णिक्कारणं जाणे ॥३१॥

अन्वयार्थ — (**पत्त विणा**) सुपात्र के बिना (**दाणं**) दान (**च**) और (**सुपुत्त विणा**) सुशील पुत्र के विना (**बहुधणं**) बहुत धन— और (**महाखेत्तं**) महाक्षेत्र—जमीन-जायदाद (**चित्त विणा**) भावों के बिना (**वय-गुण-चारित्तं**) व्रत, गुण और चारित्र (**णिक्कारणं**) निष्फल (**जाणे**) जानो।

अर्थ— सुपात्र के बिना दान, सुशील पुत्र के बिना बहुत धन और महाक्षेत्र (जमीन-जायदाद), भावों के बिना व्रत, गुण और चारित्र निष्फल जानो।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

धर्म-द्रव्य के भोग का दुष्परिणाम–

जिण्णुद्धार-पदिट्ठा-जिणपूया-तित्थवंदण वसेसधणं ।
जो भुञ्जदि सो भुञ्जदि, जिणदिट्ठं णरयगदिदुक्खं ।।३२।।

(चपला)

अन्वयार्थ – (**जो**) जो व्यक्ति (**जिण्णुद्धार**) जीर्णोद्धार (**पदिट्ठा**) प्रतिष्ठा (**जिणपूया**) जिनपूजा (**तित्थवंदण**) तीर्थ-यात्रा के (**वसेसधणं**) अवशिष्ट धन को (**भुञ्जदि**) भोगता है (**सो**) वह (**णरयगदिदुक्खं**) नरक गति के दुःख को (**भुञ्जदि**) भोगता है (**जिणदिट्ठं***) ऐसा जिनेन्द्रदेव ने कहा है ।

अर्थ– जो व्यक्ति जीर्णोद्धार, प्रतिष्ठा, जिन-पूजा और तीर्थ-यात्रा के अवशिष्ट धन को भोगता है, वह नरक गति के दुःख को भोगता है, ऐसा जिनेन्द्रदेव ने कहा है ।

---

* दिट्ठ—कथित, प्रतिपादित —पा स. म., पृ. ४६२

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

धर्म-द्रव्य के भोग का दुष्परिणाम—

पुत्तकलत्तविदूरो, दारिद्दो पंगुमूकबहिरंधो।
चांडालादिकुजादो, पूयादाणादि दव्वहरो ॥३३॥

अन्वयार्थ – (**पूयादाणादि**) पूजा, दान आदि के (**दव्वहरो**) द्रव्य का अपहरण करने वाला (**पुत्तकलत्तविदूरो**) पुत्र-स्त्री रहित (**दारिद्दो**) दरिद्री (**पंगुमूकबहिरंधो**) लंगड़ा, गूंगा, बहरा, अन्धा और (**चांडालादि कुजादो**) चाण्डाल आदि कुजाति में उत्पन्न होता है।

अर्थ—पूजा, दान आदि के द्रव्य का अपहरण करने वाला पुत्र-स्त्री रहित, दरिद्री, लंगड़ा, गूंगा, बहरा, अन्धा और चाण्डाल आदि कुजाति में उत्पन्न होता है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0 In Public Domain, Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

धर्म-द्रव्य के भोग का दुष्परिणाम–

इच्छिदफलं ण लब्भदि, जदि लब्भदि सो ण भुञ्जदे णियदं ।
वाहीणमायरो सो, पूयादाणादि दव्वहरो ।।३४।।

अन्वयार्थ – (**पूयादाणादि दव्वहरो**) पूजा, दान आदि के द्रव्य का अपहरण करने वाला (**इच्छिदफलं**) इच्छित फल को (**ण लब्भदि**) प्राप्त नहीं करता है (**जदि**) यदि (**लब्भदि**) प्राप्त करता है–तो (**सो**) वह (**ण भुञ्जदे**) उसको भोग नहीं पाता (**णियदं**) यह निश्चित है (**सो**) वह (**वाहीणमायरो**) व्याधियों का घर बन जाता है ।

अर्थ–पूजा, दान आदि के द्रव्य का अपहरण करने वाला इच्छित फल को प्राप्त नहीं करता है। यदि प्राप्त करता है तो वह उसे भोग नहीं पाता, यह निश्चित है। वह व्याधियों का घर (बन जाता है) ।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

धर्म-द्रव्य के भोग का दुष्परिणाम–

गदहत्थपादणासिय-कण्णउरंगुल विहीणदिट्ठीए ।
जो तिव्वदुक्खमूलो, पूयादाणादि दव्वहरो ।।३५।।

अन्वयार्थ – (**जो**) जो (**पूयादाणादि दव्वहरो**) पूजा, दान आदि के द्रव्य का अपहरण करने वाला है–वह (**गदहत्थ-पाद-णासिय-कण्ण-उरंगल**) हाथ, पैर, नाक, कान, छाती और अंगुली से हीन (**विहीणदिट्ठीए**) दृष्टिहीन, और (**तिव्वदुक्खमूलो**) तीव्र दुःख को प्राप्त होता है ।

अर्थ– जो पूजा, दान आदि के द्रव्य का अपहरण करने वाला है, वह हाथ-पैर-नाक-कान-छाती और अंगुली से हीन (विकलांग), दृष्टिहीन, और तीव्र दुःख का भागी होता है ।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0 In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

धर्म-कार्यों में विघ्न डालने का फल–

खय-कुट्ठ-मूल-सूला, लूय-भयंदर-जलोयरक्खिसिरो ।
सोदुण्हवाहिरादी, पूयादाणंतरायकम्मफलं ॥३६॥

(उग्गाहा)

अन्वयार्थ – (**खय-कुट्ठ-मूल-सूला**) क्षय, कुष्ठ, मूल, शूल (**लूय-भयंदर-जलोयरक्खिसिरो**) लूता–एक वातिक रोग अथवा मकड़ी का फरना, भगंदर, जलोदर, नेत्ररोग, सिर के रोग (**सोदुण्हवाहिरादी**) शीतोष्ण से होने वाली सन्निपात आदि व्याधियाँ–ये सब (**पूयादाणंतरायकम्मफलं**) पूजा, दान आदि में अन्तराय डालने के कर्म-फल हैं ।

अर्थ– क्षय, कुष्ठ, मूल, शूल, लूता (एक वातिक रोग अथवा मकड़ी का फरना), भगंदर, जलोदर, नेत्ररोग, सिर के रोग, शीतोष्ण से होने वाला सन्निपात आदि व्याधियाँ–ये सब पूजा, दान आदि में अन्तराय डालने के कर्म-फल हैं ।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

धर्म-कार्यों में विघ्न डालने का फल—

णरइ-तिरियाइ-दुगदी, दारिद्द-वियलंग-हाणि-दुक्खाणि ।
देव - गुरु - सत्थवंदण - सुदभेद - सज्झयविघणफलं ।।३७।।

अन्वयार्थ – (णरइ-तिरियाइ-दुगदी) नरक गति, तिर्यञ्च गति, दुर्गति (दारिद्द-वियलंग-हाणि-दुक्खाणि) दरिद्रता, विकलांग, हानि और दुःख ये सब (देव-गुरु-सत्थवंदण) देव-वंदना, गुरु-वंदना, शास्त्र-वंदना (सुदभेद-सज्झय विघणफलं) श्रुतभेद, स्वाध्याय में विघ्न डालने के फल हैं ।

अर्थ– नरक गति, तिर्यञ्च गति, दुर्गति, दरिद्रता, विकलांग, हानि और दुःख—यह सब देव-वंदना, गुरु-वंदना, शास्त्र-वंदना, श्रुत भेद और स्वाध्याय में विघ्न डालने के फल हैं ।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0 In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

पंचम काल का प्रभाव–

सम्मविसोही-तव-गुण-चरित्त-सण्णाण-दाणपरिहीणं ।
भरहे दुस्समयाले, मणुयाणं जायदे णियदं ।।३८।।

अन्वयार्थ – इस (**भरहे**) भरत क्षेत्र में (**दुस्समयाले**) दुःखम-पंचमकाल में (**मणुयाणं**) मनुष्यों के (**णियदं**) निश्चय ही (**सम्मविसोही**) सम्यग्दर्शन की विशुद्धि (**तव-गुण-चरित्त-सण्णाण-दाण-परिहीणं**) तप, मूलगुण, सम्यक्चारित्र, सम्यग्ज्ञान और दान में हीनता (**जायदे**) होती है ।

अर्थ– (इस) भरत क्षेत्र में दुःखम (पंचम काल) में मनुष्यों के निश्चय ही सम्यग्दर्शन की विशुद्धि, तप, मूलगुण, सम्यक् चारित्त, सम्यग्ज्ञान और दान में हीनता होती है (पायी जाती है) ।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

धर्माचरण के बिना दुर्गति–

णहि दाणं णहि पूया, णहि सीलं णहि गुणं ण चारित्तं ।
जे जइणा भणिदा ते, णेरइया होंति कुमाणुसा तिरिया ।।३६।।

(गाहिणी)

अन्वयार्थ – (जे) जो मनुष्य (णहि) न तो (दाणं) दान देते (णहि) न ही (पूया) पूजा करते (णहि) न ही (सीलं) शील पालते (णहि) न ही (गुणं) गुण-धारण करते और (ण) न (चारित्त) चारित्र पालते हैं। (ते) वे (णेरइया) नारकी (कुमाणुसा) कुमानुष और (तिरिया) तिर्यञ्च (होंति) होते हैं–ऐसा (जइणा) जिनदेव ने (भणिदा) कहा है।

अर्थ– जो मनुष्य न तो दान (देते हैं), न ही पूजा (करते हैं), न ही शील (पालते हैं), न ही गुण (धारण करते हैं) और न चारित्र (पालते हैं), वे नारकी, कुमानुष और तिर्यञ्च होते हैं–ऐसा जिनदेव ने कहा है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0. In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

विवेक के बिना सम्यक्त्व नहीं होता—

ण वि जाणदि कज्जमकज्जं सेयमसेयं पुण्णपावं हि ।
तच्चमतच्चं धम्ममधम्मं सो सम्मउम्मुक्को ।।४०।।

अन्वयार्थ – जो (**कज्जमकज्जं**) कर्त्तव्य और अकर्त्तव्य (**सेयमसेयं**) श्रेय और अश्रेय (**पुण्णपावं**) पुण्य और पाप (**तच्चमतच्चं**) तत्त्व और अतत्त्व (**धम्ममधम्मं**) धर्म और अधर्म को (**हि**) निश्चय से (**ण वि**) नहीं (**जाणदि**) जानता है (**सो**) वह (**सम्मउम्मुक्को**) सम्यक्त्व से रहित है।

अर्थ– जो कर्त्तव्य-अकर्त्तव्य, श्रेय-अश्रेय (हित-अहित), पुण्य-पाप, तत्त्व-अतत्त्व, और धर्म-अधर्म को निश्चय से (वस्तुत:) नहीं जानता है, वह सम्यक्त्व से रहित है ।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0. In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अविवेकी को सम्यक्त्व नहीं होता—

ण वि जाणदि जोग्गमजोग्गं णिच्चमणिच्चं हेयमुवादेयं ।
सच्चमसच्चं भव्वमभव्वं सो सम्मउम्मुक्को ।।४१।।

(चपला)

अन्वयार्थ – जो (**जोग्गमजोग्गं**) योग्य-अयोग्य (**णिच्चमणिच्चं**) नित्य-अनित्य (**हेयमुवादेयं**) हेय-उपादेय (**सच्चमसच्चं**) सत्य-असत्य (**भव्वमभव्वं**) भव्य-अभव्य को (**ण वि**) नहीं (**जाणदि**) जानता है (**सो**) वह (**सम्मउम्मुक्को**) सम्यक्त्व से रहित है ।

अर्थ– जो योग्य-अयोग्य, नित्य-अनित्य, हेय-उपादेय, सत्य-असत्य और भव्य-अभव्य को नहीं जानता है, वह सम्यक्त्व से रहित है ।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

लौकिक जनों की संगति त्याज्य है–

लोइयजणसंगादो, होदि महामुहरकुडिलदुब्भावो ।
लोइयसंगं तम्हा, जोइवि तिविहेण मुच्चाहो ।।४२।।

अन्वयार्थ – मनुष्य (**लोइयजणसंगादो**) लौकिक जनों की संगति से (**महामुहरकुडिलदुब्भावो**) अत्यन्त वाचाल, कुटिल और दुर्भावना-युक्त (**होदि**) हो जाता है (**तम्हा**) इसलिए (**जोइवि**) देखभाल कर (**लोइयसंगं**) लौकिक जनों की संगति को (**तिविहेण**) मन-वचन-काय से (**मुच्चाहो**) छोड़ देना चाहिए ।

अर्थ– (मनुष्य) लौकिक जनों (सामान्यजनों) की संगति से अत्यन्त वाचाल, कुटिल और दुर्भावनायुक्त हो जाता है; इसलिए देखभाल कर (विचारपूर्वक) लौकिक जनों की संगति को मन-वचन-काय से छोड़ देना चाहिए ।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0 In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

सम्यक्त्व-रहित जीव की पहचान—

उग्गो तिव्वो दुट्ठो, दुब्भावो दुस्सुदो दुरालावो।
दुम्मदरदो विरुद्धो, सो जीवो सम्मउम्मुक्को ।।४३।।

अन्वयार्थ — जो (**उग्गो**) उग्र (**तिव्वो**) तीव्र (**दुट्ठो**) दुष्ट (**दुब्भावो**) दुर्भावनायुक्त (**दुस्सुदो**) मिथ्या शास्त्रों का श्रवण करने वाला (**दुरालावो**) दुष्टभाषी (**दुम्मदरदो**) मिथ्या मद में अनुरक्त और (**विरुद्धो**) आत्मधर्म के विरुद्ध है (**सो जीवो**) वह जीव (**सम्मउम्मुक्को**) सम्यक्त्व-रहित है।

अर्थ— जो उग्र (प्रकृति वाला है), तीव्र (स्वभाव वाला है), दुष्ट (प्रकृति का है), दुर्भाव (शील है), मिथ्या शास्त्रों का श्रवण करने वाला है, दुष्टभाषी है, मिथ्यामद में अनुरक्त है और विरुद्ध (आत्मधर्म के विरुद्ध आचरण करने वाला) है, वह जीव सम्यक्त्व-रहित है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0 In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

दुष्ट स्वभावी को सम्यक्त्व नहीं होता–

खुद्दो रुद्दो रुट्ठो, अणिट्ठ पिसुणो सगव्वियोसूयो ।
गायण-जायण-भंडण-दुस्सणसीलो दु सम्मउम्मुक्को ।।४४।।

(उग्गाहा)

अन्वयार्थ – (**खुद्दो**) क्षुद्र (**रुद्दो**) रौद्र (**रुठ्टो**) रुष्ट (**अणिट्ठ**) दूसरों का अनिष्ट चाहने या करने वाले (**पिसुणो**) चुगलखोर (**सगव्वियो**) अभिमानी (**असूयो**) असहिष्णु/ईर्ष्यालु (**गायण**) गायक (**जायण**) याचक (**भंडण**) कलह करने वाले/गाली देने वाले (**दु**) और (**दुस्सणसीलो**) दूसरों को दोष लगाने वाले–ये सब (**सम्मउम्मुक्को**) सम्यक्त्व-रहित होते हैं ।

अर्थ– क्षुद्र-रौद्र (स्वभाव वाले), रुष्ट, दूसरों का अनिष्ट चाहने या करने वाले, चुगलखोर, अभिमानी, असहिष्णु (ईर्ष्यालु), गायक, याचक, कलह करने वाले (गाली देने वाले) और दूसरों को दोष लगाने वाले–ये सब सम्यक्त्व-रहित होते हैं ।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0-In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

बाणर-गद्दह-साण-गय, बग्घ-बराह-कराह।
मक्खि-जलूय सहाव णर, जिणवर धम्म विणास ॥४५॥

(दोहा)

अन्वयार्थ – (**बाणर**) बन्दर (**गद्दह**) गधा (**साण**) कुत्ता (**गय**) हाथी (**बग्घ**) बाघ (**बराह**) सूअर (**कराह**) कच्छप (**मक्खि**) मक्खी (**जलूय सहाव**) जोंक के स्वभाव वाले (**णर**) मनुष्य (**जिणवरधम्म**) जिनेन्द्रदेव के धर्म का (**विणास**) विनाश करने वाले होते हैं।

अर्थ– बन्दर, गधा, कुत्ता, हाथी, बाघ, सूअर, कच्छप, मक्खी और जोंक के स्वभाव वाले मनुष्य जिनेन्द्रदेव के धर्म का विनाश करने वाले होते हैं।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

सम्यग्दर्शन की उत्कृष्टता–

सम्म विणा सण्णाणं, सच्चारित्तं ण होदि णियमेण ।
तो रयणत्तय मज्झे, सम्मगुणुविकट्ठमिदि जिणुद्दिट्ठं ।।४६।।

(उग्गाहा)

अन्वयार्थ – (**सम्म विणा**) सम्यग्दर्शन के विना (**सण्णाणं**) सम्यग्ज्ञान और (**सच्चारित्तं**) सम्यक् चारित्र (**णियमेण**) नियम से (**ण**) नहीं (**होदि**) होते हैं (**तो**) इसलिए (**रयणत्तय मज्झे**) रत्नत्रय में (**सम्मगुणुक्किट्ठं**) सम्यग्दर्शन गुण उत्कृष्ट है (**इदि**) यह (**जिणुद्दिट्ठं**) जिनेन्द्रदेव ने कहा है ।

अर्थ– सम्यग्दर्शन के विना सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्र नियम से नहीं होते हैं; इसलिए रत्नत्रय में सम्यग्दर्शन गुण उत्कृष्ट है, यह जिनेन्द्रदेव ने कहा है ।

 Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0. In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

कुतव कुलिंगि कुणाणी, कुवय कुसीले कुदंसण कुसत्थे ।
कुणिमित्ते संथुय थुइ, पसंसण सम्महाणि होदि णियमं ।।४७।।

(गाहिणी)

अन्वयार्थ - (**कुतव**) मिथ्यातप (**कुलिंगि**) कुलिंगी/मिथ्यावेष धारण करने वाले (**कुणाणी**) मिथ्याज्ञानी (**कुवय**) मिथ्याव्रत (**कुसीले**) मिथ्याशील (**कुदंसण**) मिथ्यादर्शन (**कुसत्थे**) मिथ्या शास्त्र (**कुणिमित्ते**) झूठे निमित्तों की (**संथुय**) संस्तुति (**थुइ**) स्तुति और (**पसंसणं**) प्रशंसा करने स (**णियमं**) नियम से (**सम्महाणि**) सम्यक्त्व की हानि (**होदि**) होती है ।

अर्थ- मिथ्यातप, कुलिंगी (मिथ्यादृष्टि साधु), मिथ्या ज्ञानी, मिथ्या व्रत, मिथ्या शील, मिथ्या दर्शन, मिथ्या शास्त्र और झूठे निमित्तों की संस्तुति, स्तुति और प्रशंसा करने से नियम से सम्यक्त्व की हानि होती है ।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

मिथ्यात्व ही दुःखों का कारण है–

तणुकुट्ठी कुलभंगं, कुणदि जहा मिच्छमप्पणो वि तहा।
दाणादि सुगुणभंगं गदिभंगं मिच्छमेव हो कट्ठं ।।४८।।

(उग्गाहा)

अन्वयार्थ – (**जहा**) जैसे (**तणुकुट्ठी**) शरीर का कोढ़ी व्यक्ति (**कुलभंगं**) अपने कुल का विनाश (**कुणदि***) कर देता है (**तहा**) उसी प्रकार (**मिच्छं वि**) मिथ्यात्व भी (**अप्पणो**) अपने (**दाणादि सुगुणभंगं**) दान आदि सद्गुणों का विनाश और (**गदिभंगं**) सद्गति का विनाश करता है (**हो**) अहो (**मिच्छमेव**) मिथ्यात्व ही (**कट्ठं**) कष्टप्रद है।

अर्थ– जैसे शरीर का कोढ़ी (अपने रक्त-सम्बन्ध से) अपने कुल का विनाश कर देता है, उसी प्रकार मिथ्यात्व भी अपनी आत्मा के दान आदि सद्गुणों और सद्गति का विनाश करता है। अहो ! (संसार में) मिथ्यात्व ही कष्टप्रद है।

---

* कुणदि––प्रा. भा. व्या., पृ. ७४२.

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

सम्यग्दृष्टि ही धर्म को जानता है–

देव-गुरु-धम्म-गुण चारित्त-तवायार-मोंक्खगदिभेयं ।
जिणवयण सुदिट्ठि विणा, दीसदि किं जाणदे सम्मं ।।४९।।

अन्वयार्थ – (**देव-गुरु-धम्म-गुण-चारित्त-तवायार-मोंक्खगदिभेयं**) देव, गुरु, धर्म, गुण, चारित्र, तपाचार, मोक्षगति का रहस्य (**जिणवयण**) जिनदेव के वचन (**सुदिट्ठि विणा**) सम्यग्दृष्टि के बिना (**किं**) क्या (**दीसदि**) दीखते हैं; या (**जाणदे**) जाने जा सकते हैं (**सम्मं**) सम्यग्दर्शन–ही इन सबको देखता, जानता है ।

अर्थ – देव, गुरु, धर्म, गुण, चारित्र, तपाचार, मोक्षगति का रहस्य और जिनदेव के वचन सम्यग्दृष्टि के बिना क्या देखे या जाने जा सकते हैं ? सम्यग्दर्शन ही इन सबको देखता और जानता है ।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

ऍक्क खणं ण वि चिंतदि, मोॅक्खणिमित्तं णियप्पसब्भावं।
अणिसि विचिंतदि पावं, बहुलालावं मणे विचिंतेदि ॥५०॥

(उग्गाहा)

अन्वयार्थ — मिथ्यादृष्टि जीव (**मोॅक्खणिमित्तं**) मोक्ष-प्राप्ति में निमित्तभूत (**णियप्पसब्भावं***) अपने आत्म-स्वभाव का (**ऍक्क खणं वि**) एक क्षण भी (**ण चिंतदि**) चिन्तन नहीं करता (**अणिसि**) दिनरात (**पावं**) पाप का (**विचिंतदि**) चिन्तन करता है तथा (**मणे**) मन में (**बहुलालावं**) दूसरों के बारे में अनेक बातें (**विचिंतेदि**) सोचता रहता है।

अर्थ — (मिथ्यादृष्टि जीव) मोक्ष-प्राप्ति के निमित्तभूत अपने आत्म-स्वभाव का चिन्तन एक क्षण भी नहीं करता। दिनरात पाप का चिन्तन करता है और मन में (दूसरों के बारे में) अनेक बातें सोचता रहता है।

---

* सब्भाव—स्वभाव, सद्भाव   पा. स म., पृ. ८६४.

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

मिथ्यादृष्टि आत्मा को नहीं जानता–

मिच्छामदि मदमोहासवमत्तो बोॅल्लदे जहा भुल्लो ।
तेण ण जाणदि अप्पा, अप्पाणं सम्मभावाणं ।।५१।।

अन्वयार्थ – (**मिच्छामदि**) मिथ्यादृष्टि (**मदमोहासवमत्तो**) मद और मोह की मदिरा से मतवाला होकर (**जहा भुल्लो**) भुलक्कड़ के समान (**बोॅल्लदे**) प्रलाप करता है (**तेण**) इसलिए वह (**अप्पा**) अपनी आत्मा को और (**अप्पाणं**) आत्मा के (**सम्मभावाणं**) साम्य भावों को (**ण जाणदि**) नहीं जानता है ।

अर्थ – मिथ्यादृष्टि जीव मद और मोह की मदिरा से मतवाला होकर भुलक्कड़ के समान प्रलाप करता है; इसलिए वह आत्मा को और आत्मा के साम्यभावों को नहीं जानता है ।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

उपशम भाव से संवर और निर्जरा होती है–

पुव्वट्ठिद खवदि कम्म, पविसदु णो देदि अहिणवं कम्मं ।
इह-परलोय महप्पं, देदि तहा उवसमो भावो ।।५२।।

अन्वयार्थ – **(उवसमो भावो)** भव्य जीवों का उपशम भाव **(पुव्वट्ठिद कम्म)** पूर्व में स्थित/बद्ध कर्मों का **(खवेदि)** क्षय करता है **(अहिणवं कम्मं)** नये कर्मों को **(पविसदु)** प्रवेश करने **(णो देदि)** नहीं देता **(तहा)** तथा **(इह-परलोय महप्पं)** इस लोक और परलोक में माहात्म्य **(देदि)** देता है/प्रगट करता है ।

अर्थ – (भव्य जीवों का) उपशम भाव पूर्वबद्ध कर्मो का क्षय (निर्जरा) करता है, नये कर्मों को प्रवेश नहीं करने देता (नये कर्मों का संवर करता है) तथा इस लोक और परलोक में माहात्म्य प्रगट करता है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

सम्यग्दृष्टि ज्ञान-वैराग्य में काल बिताता है—

सम्मादिट्ठी कालं, बोल्लदि वेरग्गणाणभावेहिं ।
मिच्छादिट्ठी वांछा, दुब्भावालस्सकलहेहिं ॥५३॥

अन्वयार्थ – (**सम्मादिट्ठी**) सम्यग्दृष्टि (**वेरग्गणाणभावेहिं**) वैराग्य और ज्ञानभाव से (**कालं**) समय को (**बोल्लदि**) बिताता है— (**मिच्छादिट्ठी**) मिथ्यादृष्टि (**वांछा**) आकांक्षा (**दुब्भावालस्स**) दुर्भाव, आलस्य और (**कलहेहिं**) कलह के द्वारा—अपना समय बिताता है ।

अर्थ – सम्यग्दृष्टि वैराग्य और ज्ञानभाव से समय को व्यतीत करता है, (जबकि) मिथ्यादृष्टि आकांक्षा, दुर्भाव, आलस्य और कलह से (अपना) समय बिताता है ।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0 In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

भरतक्षेत्र में पापी अधिक हैं–

अज्जवसप्पिणि भरहे, पउरा रुद्दट्ठझाणया दिट्ठा।
णट्ठा दुट्ठा कट्ठा, पाविट्ठा किण्ह-णील-काओदा ॥५४॥

(उग्गाहा)

अन्वयार्थ – (**अज्जवसप्पिणि**) आज/वर्तमान अवसर्पिणी काल में (**भरहे**) भरत क्षेत्र में (**रुद्दट्ठझाणया**) रौद्र और आर्तध्यान वाले (**णट्ठा**) नष्ट (**दुट्ठा**) दुष्ट (**कट्ठा**) दु:खी (**पाविट्ठा**) पापी (**किण्ह-णील-काओदा**) कृष्ण, नील और कापोत लेश्या वाले (**पउरा**) अधिक मनुष्य (**दिट्ठा**) देखे जाते हैं।

अर्थ – वर्तमान अवसर्पिणी (काल) में भरत क्षेत्र में रौद्र और आर्तध्यान वाले, नष्ट, दुष्ट, दु:खी, पापी और कृष्ण-नील-कापोत लेश्या वाले मनुष्य अधिक देखे जाते हैं।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

भरतक्षेत्र में सम्यग्दृष्टि दुर्लभ हैं–

अज्जवसप्पिणि भरहे, पंचमयाले मिच्छपुव्वया सुलहा ।
सम्मत्तपुव्व सायारणयारा दुल्लहा होंति ॥५५॥

(चपला)

अन्वयार्थ – (**अज्जवसप्पिणि**) आज/वर्तमान अवसर्पिणी काल में (**भरहे**) भरत क्षेत्र में (**पंचमयाले**) पंचमकाल में (**मिच्छपुव्वया**) मिथ्यादृष्टि जीव (**सुलहा**) सुलभ हैं; किन्तु (**सम्मत्तपुव्व**) सम्यग्दृष्टि (**सायारणयारा**) गृहस्थ और मुनि (**दुल्लहा**) दुर्लभ (**होंति**) हैं ।

अर्थ – वर्तमान अवसर्पिणी (काल) में भरत क्षेत्र में पंचमकाल में मिथ्यादृष्टि जीव सुलभ हैं, किन्तु सम्यग्दृष्टि गृहस्थ और मुनि दुर्लभ हैं ।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0 In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

इस काल में भी धर्मध्यान होता है—

अज्जवसप्पिणि भरहे, धम्मज्झाणं पमादरहिदो त्ति ।
होदि त्ति जिणुद्दिट्ठं, ण हु मण्णदि सो हु कुद्दिट्ठी ।।५६।।

अन्वयार्थ – (**अज्जवसप्पिणि**) आज/वर्तमान अवसर्पिणी काल में (**भरहे**) भरत क्षेत्र में (**धम्मज्झाणं**) धर्मध्यान (**पमादरहिदो त्ति**) प्रमाद-रहित (**होदि**) होता है (**त्ति**) यह (**जिणुद्दिट्ठं**) जिनेन्द्रदेव ने कहा है जो ऐसा (**ण हु**) नहीं (**मण्णदि**) मानता है (**सो**) वह (**हु**) निश्चय से (**कुद्दिट्ठी**) कुदृष्टि/मिथ्यादृष्टि है।

अर्थ – वर्तमान अवसर्पिणी काल में भरत क्षेत्र में प्रमाद-रहित धर्मध्यान होता है, यह जिनेन्द्रदेव ने कहा है। जो ऐसा नहीं मानता है, वह निश्चय से मिथ्यादृष्टि है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0 In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अशुभ और शुभ भावों का फल—

असुहादो णिरयाऊ, सुहभावादो दु सग्गसुहमाओ ।
दुहसुहभावं जाणदु, जं ते रुच्चेद तं कुज्जा ।।५७।।

अन्वयार्थ – (असुहादो) अशुभ भावों से (णिरयाऊ*) नरक आयु (दु) और (सुहभावादो) शुभ भावों से (सग्गसुहमाओ) स्वर्ग-सुख और स्वर्ग आयु मिलती है; अतः (दुहसुहभावं) दुःख-सुख भावों को (जाणदु) जानो और इनमें (ते) तुम्हें (जं) जो (रुच्चेद) अच्छा लगे (तं) उसे (कुज्जा) करो।

अर्थ – अशुभ भावों से नरकायु और शुभ भावों से स्वर्ग-सुख और स्वर्गायु (मिलती है), अतः दुःख-सुख भावों को जानो और तुम्हें जो अच्छा लगे, उसे करो।

---

* णिरय—नरक पा. स. म., पृ. ४०४.

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अशुभ भाव के कारण–

हिंसादिसु कोहादिसु, मिच्छाणाणेसु पक्खवाएसु ।
मच्छरिदेसु मदेसु दुरहिणिवेसेसु असुहलेस्सेसु ॥५८॥
विकहादिसु रुद्दट्टज्झाणेसु असुयगेसु दंडेसु ।
सल्लेसु गारवेसु य, जो वट्टदि असुहभावो सो ॥५९॥

अन्वयार्थ – (**हिंसादिसु**) हिंसादि में (**कोहादिसु**) क्रोधादि में (**मिच्छाणाणेसु**) मिथ्याज्ञान में (**पक्खवाएसु**) पक्षपात में (**मच्छरिदेसु**) मात्सर्य में (**मदेसु**) मदों में (**दुरहिणिवेसेसु**) दुरभिनिवेशों में (**असुहलेस्सेसु**) अशुभ लेश्याओं में (**विकहादिसु**) विकथाओं में (**रुद्दट्टज्झाणेसु**) आर्त-रौद्र ध्यानों में (**असुयगेसु**) ईर्ष्या में (**दंडेसु**) असंयमों में (**सल्लेसु**) शल्यों में (**य**) और (**गारवेसु**) मान-बढ़ाई में (**जो वट्टदि**) जो वर्तन होता है (**सो**) वह (**असुहभावो**) अशुभभाव है ।

अर्थ – हिंसादि (पापों), क्रोधादि (कषायों), मिथ्याज्ञान, पक्षपात, मात्सर्य, मदों, दुरभिनिवेशों, अशुभ लेश्याओं, विकथाओं, आर्त-रौद्र ध्यानों, ईर्ष्या, असंयमों, शल्यों और मान-बढ़ाई में जो वर्तन होता है, वह अशुभ भाव है ।

 Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0 In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

शुभभाव का लक्षण–

दव्वत्थिकाय छप्पण, तच्चपयत्थेसु सत्तणवगेसु ।
बंधणमोक्खे तक्कारणरूवे वारसणुवेक्खे ।।६०।।

रयणत्तयस्सरूवे अज्जाकम्मे दयादिसद्धम्मे ।
इच्चेव माइगे जो, वट्टदि सो होदि सुहभावो ।।६१।।

अन्वयार्थं – (छप्पण दव्वत्थिकाय) छह द्रव्य, पाँच अस्तिकाय (सत्तणवगेसु तच्चपयत्थेसु) सात तत्त्व, नौ पदार्थ (बंधणमोक्खे) वन्ध और मोक्ष (तक्कारणरूवे) उसके कारणरूप (वारसणुवेक्खे) वारह अनुप्रेक्षाओं (रयणत्तयस्सरूवे) रत्नत्रय-स्वरूप (अज्जाकम्मे) आर्यकर्म (दयादिसद्धम्मे) दया आदि सद्धर्म (इच्चेव माइगे) इत्यादि में (जो वट्टदि) जो वर्तन होता है (सो) वह (सुहभावो) शुभभाव (होदि) होता है ।

अर्थ – छह द्रव्य, पाँच अस्तिकाय, सात तत्त्व, नौ पदार्थ, बन्ध और मोक्ष, उसके (मोक्ष के) कारणरूप बारह अनुप्रेक्षा, रत्नत्रय स्वरूप, आर्यकर्म, दया आदि सद्धर्म इत्यादि में जो वर्तन होता है, वह शुभभाव होता है ।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri
सम्यक्त्व से सुगति होती है–

सम्मत्तगुणाइ सुगदि, मिच्छादो होदि दुग्गदी णियमा ।
इदि जाण किमिह बहुणा, जं रुच्चदि तं कुज्जाहो ।।६२।।

अन्वयार्थ – (सम्मत्तगुणाइ) सम्यक्त्व गुण से (णियमा) नियम से (सुगदि) सुगति और (मिच्छादो) मिथ्यात्व से (दुग्गदी) दुर्गति (होदि) होती है (इदि) यह (जाण) जान (इह) यहाँ (बहुणा किं) अधिक कहने से क्या (जं) जो (रुच्चदि) अच्छा लगे (तं) वह (कुज्जाहो) कर ।

अर्थ – सम्यक्त्व गुण से नियम से सुगति और मिथ्यात्व से दुर्गति होती है– यह जान । यहाँ अधिक कहने से क्या लाभ है ? जो तुझे अच्छा लगे, वह कर ।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0 In Public Domain, Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

मोह नष्ट किये बिना संसार से पार नहीं होता–

मोह ण छिज्जदि अप्पा, दारुणकम्मं करेदि बहुवारं।
ण हु पावदि भवतीरं, किं बहुदुक्खं वहेदि मूढमदी ।।६३।।

(उग्गाहा)

अन्वयार्थ – (**अप्पा**) यह आत्मा (**मोह**) मोह को (**छिद्ददि ण**) नष्ट नहीं करता है (**दारुणकम्मं**) दारुण कर्म-व्रत उपवासादि (**बहु-वारं**) अनेक वार (**करेदि**) करता है (**हु**) निश्चय से वह (**भवतीरं**) संसार-समुद्र का किनारा (**ण पावदि**) नहीं पाता; फिर (**मूढमदी**) यह मूर्ख (**बहुदुक्खं**) अनेक दु:ख (**किं वहेदि**) क्यों उठाता है ?

अर्थ – यह आत्मा मोह को नष्ट नहीं करता है और कठोर कर्म (व्रत उपवासादि) अनेक बार करता है। निश्चय ही यह संसार (समुद्र) का किनारा नहीं पाता, (फिर) यह मूर्ख अनेक दु:ख क्यों उठाता है ?

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

बहिरात्मा के व्रताचरणादि निष्फल हैं--

धरियउ बाहिर्लिगं, परिहरियउ बाहिरक्खसोॅक्खं हि ।
करियउ किरियाकम्मं, मरियउ जम्मियउ बहिरप्प जीवो ।।६४।।

(उग्गाहा)

अन्वयार्थ – (**बहिरप्प जीवो**) बहिरात्मा जीव (**बाहिर्लिगं**) बाह्य लिंग/द्रव्यलिंग को (**धरियउ**) धारणकर (**बाहिरक्खसोॅक्खं हि**) बाह्य इन्द्रियों के सुख को ही (**परिहरियउ**) छोड़कर (**किरियाकम्मं**) क्रियाकाण्ड-व्रताचरणादि (**करियउ**) करता हुआ (**जम्मियउ मरियउ**) जन्म-मरण करता रहता है ।

अर्थ – बहिरात्मा जीव बाह्यलिंग (द्रव्यलिंग-मुनिवेश) धारण कर, बाह्य इन्द्रियों के सुख को ही छोड़कर क्रियाकाण्ड (बाह्य व्रताचरणादि) करता हुआ जन्म-मरण करता रहता है (एक सम्यग्दर्शन के बिना सब निष्फल है) ।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

मिथ्यात्व के कारण मोक्ष-सुख नहीं
CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

मोँक्खणिमित्तं दुक्खं, वहेदि परलोयदिट्ठि तणुदंडी ।
मिच्छाभाव ण छिज्जदि, किं पावदि मोँक्खसोँक्खं हि ॥६५॥

अन्वयार्थ – (**परलोयदिट्ठि**) परलोक पर दृष्टि रखने वाला/परलोक में सुखों की अभिलाषा करने वाला (**तणुदंडी**) अनेक काय-क्लेश सहन करने वाला/मिथ्यादृष्टि बहिरात्मा (**मोँक्खणिमित्तं**) मोक्ष पाने के निमित्त (**दुक्खं**) दु:ख (**वहेदि**) सहन करता है; किन्तु वह (**मिच्छाभाव**) मिथ्यात्व-भाव को (**ण छिज्जदि**) नष्ट नहीं करता–तव वह (**किं**) क्या (**हि**) निश्चय से/वस्तुत: (**मोँक्खसोँक्खं**) मोक्ष-सुख को (**पावदि**) प्राप्त करता है ?

अर्थ – परलोक पर दृष्टि रखने वाला (परलोक में सुखों की अभिलाषा करने वाला), अनेक काय-क्लेश सहन करने वाला (मिथ्यादृष्टि बहिरात्मा) मोक्ष पाने के निमित्त दु:ख सहन करता है (किन्तु वह) मिथ्यात्व भाव को नष्ट नहीं करता। (तब वह) क्या निश्चय से (वस्तुत:) मोक्ष-सुख को प्राप्त करता है ?

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

कषाय के नाश से कर्मों का नाश—

ण हु दंडदि कोहादिं, देहं दंडदि कहं खवदि कम्मं ।
सप्पो किं मुवदि तहा, वम्मीए मारदे लोए ।।६६।।

अन्वयार्थ – बहिरात्मा (**कोहादिं**) क्रोधादि को (**ण हु**) नहीं (**दंडदि**) दण्ड देता, निग्रह करता (**देहं**) देह को (**दंडदि**) दण्ड देता है, तब वह (**कम्मं**) कर्मों को (**कहं**) किस प्रकार (**खवदि**) नष्ट कर सकता है (**तहा**) जैसे (**लोए**) लोक में (**वम्मीए**) वामी साँप के बिल को (**मारदे**) मारने पर, नष्ट करने पर (**किं**) क्या (**सप्पो**) सर्प (**मुवदि**) मरता है ?

अर्थ – (बहिरात्मा) क्रोधादि को दण्ड नहीं देता (निग्रह नहीं करता), देह को दण्ड देता है। (तब वह) कर्मों को किस प्रकार नष्ट कर सकता है। जैसे लोक में वामी (साँप के बिल) को मारने पर (नष्ट करने पर) क्या साँप मरता है ?

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri
संयम उपशम भाव से होता है—

उवसमतवभावजुदो, णाणी सो ताव संजदो होदि ।
णाणी कसायवसगो, असंजदो होदि सो ताव ।।६७।।

अन्वयार्थ – (**णाणी**) ज्ञानी (**उवसमतवभावजुदो**) उपशम और तपभाव से युक्त है (**सो**) वह (**ताव**) तब (**संजदो**) संयमी (**होदि**) है; (**णाणी**) ज्ञानी (**कसायवसगो**) जब कषाय के वशीभूत रहता है (**ताव**) तब (**सो**) वह (**असंजदो**) असंयमी (**होदि**) होता है– रहता है।

अर्थ—ज्ञानी (जब) उपशम और तपभाव से युक्त रहता है, तभी वह संयमी है, (किन्तु) जब वह कषाय के वशीभूत रहता है, तब असंयमी रहता है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

मात्र ज्ञान से कर्म-क्षय नहीं होता–

णाणी खवेदि कम्मं, णाणबलेणेदि बोल्लदे अण्णाणी ।
वेज्जो भेसज्जमहं, जाणे इदि णस्सदे वाही ।।६८।।

(चपला)

अन्वयार्थ – (**णाणी**) ज्ञानी (**णाणबलेण**) ज्ञान की शक्ति से (**कम्मं**) कर्मों का (**खवेदि**) क्षय करता है (**इदि**) इस प्रकार (**अण्णाणी**) अज्ञानी (**बोल्लदे**) कहता है–जैसे (**अहं**) मैं (**भेसज्जं**) औषधि (**जाणे**) जानता हूँ (**इदि**) इतने कहने मात्र से–क्या (**वेज्जो**) वैद्य–कहीं (**वाही**) व्याधि को (**णस्सदे**) नष्ट कर देता है ?

अर्थ – ज्ञानी ज्ञान की शक्ति से कर्मों का क्षय करता है, इस प्रकार अज्ञानी कहता है; (जैसे) 'मैं औषधि जानता हूँ' इतना कहने मात्र से (क्या) वैद्य व्याधि को नष्ट कर देता है ?

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0 In Public Domain, Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

कर्म-नाश का क्रमिक उपाय-

पुव्वं सेवदि मिच्छा-मलसोहणहेदु सम्म-भेसज्जं ।
पच्छा सेवदि कम्मामयणासणचरिय-भेसज्जं ॥६९॥

अन्वयार्थ – (**पुव्वं**) पहले (**मिच्छामलसोहणहेदुसम्म-भेसज्जं**) मिथ्यात्व रूपी मल के शोधन की कारण सम्यक्त्व रूपी औषधि का (**सेवदि**) सेवन किया जाता है (**पच्छा**) पश्चात् (**कम्मामयणासण-चरिय-भेसज्जं**) कर्मरूपी व्याधि का नाश करने के लिये चारित्र रूपी औषधि का (**सेवदि**) सेवन किया जाता है ।

अर्थ – पहले मिथ्यात्व रूपी मल के शोधन की कारणभूत सम्यक्त्व रूपी औषधि का सेवन किया जाता है; पश्चात् कर्म रूपी व्याधि का नाश करने के लिए चारित्र रूपी औषधि का सेवन किया जाता है ।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अज्ञानी की अपेक्षा ज्ञानी का माहात्म्य—

अण्णाणीदो विसयविरत्तादो होदि सयसहस्सगुणो।
णाणी कसायविरदो विसयासत्तो जिणुद्दिट्ठं ॥७०॥

अन्वयार्थ – (**विसयविरत्तादो**) विषयों से विरक्त (**अण्णाणीदो**) अज्ञानी की अपेक्षा (**विसयासत्तो**) विषयों में आसक्त; किन्तु (**कसायविरदो**) कषाय से विरक्त (**णाणी**) ज्ञानी (**सयसहस्सगुणो**) लाख गुना फल (**होदि**) होता है / प्राप्त करता है (**जिणुद्दिट्ठं**) ऐसा जिनेन्द्रदेव ने कहा है।

अर्थ – विषयों से विरक्त अज्ञानी की अपेक्षा विषयों में आसक्त (किन्तु) कषायों से विरक्त ज्ञानी लाख गुना (फल) प्राप्त करता है, ऐसा जिनेन्द्रदेव ने कहा है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

वैराग्यहीन त्याग का निषेध–

विणओ भत्तिविहोणो, महिलाणं रोदणं विणा णेहं ।
चागो वेरग्ग विणा, एदेदो वारिआ भणिदा ।।७१।।

अन्वयार्थ – (**भत्तिविहोणो**) भक्ति के बिना (**विणओ**) विनय (**णेहं विणा**) स्नेह के बिना (**महिलाणं**) महिलाओं का (**रोदणं**) रुदन और (**वेरग्ग विणा**) वैराग्य के बिना (**चागो**) त्याग (**एदेदो**) ये (**वारिआ***) प्रतिषिद्ध (**भणिदा**) कहे गये हैं।

अर्थ – भक्तिविहीन विनय, स्नेह के बिना महिलाओं का रुदन (और) वैराग्य के बिना त्याग–ये प्रतिषिद्ध कहे गये हैं।

* वारिअ–निवारित, प्रतिषिद्ध —पा. स. म., पृ. ७६०

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

संयमहीन मुनि कुछ नहीं पाता—

सुहडो सूरत्त विणा, महिला सोहग्गरहिद परिसोहा ।
वेरग्ग-णाण-संजम हीणा खवणा ण किं पि लब्भंते ।।७२।।

(उग्गाहा)

अन्वयार्थ – **(सूरत्त विणा)** शूरता के बिना **(सुहडो)** योद्धा **(सोहग्गरहिद)** सौभाग्य रहित **(महिला परिसोहा)** महिला की शोभा **(वेरग्ग-णाण-संजम हीणा)** वैराग्य, ज्ञान और संयम से रहित **(खवणा)** क्षपणक/मुनि **(किं पि)** कुछ भी **(ण)** नहीं **(लब्भंते)** प्राप्त करते ।

अर्थ – शूरता के बिना योद्धा, सौभाग्यरहित स्त्रियों की शोभा और वैराग्य, ज्ञान और संयम से हीन मुनि कुछ भी प्राप्त नहीं करते ।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अज्ञानी को सुख नहीं–

वत्थुसमग्गो मूढो, लोही लब्भदि फलं जहा पच्छा।
अण्णाणी जो विसयासत्तो लहदि तहा चेवं ॥७३॥

अन्वयार्थ – (जहा) जैसे (वत्थुसमग्गो*) समस्त पदार्थों से युक्त (मूढो) मूर्ख (लोही) लोभी मनुष्य (पच्छा) बाद में (फलं) फल (लब्भदि) पाता है (तहा) उसी प्रकार (जो) जो (विसयासत्तो) विषयासक्त (अण्णाणी) अज्ञानी है–वह (चेवं लहदि) पीछे फल पाता है।

अर्थ – जैसे समस्त पदार्थों से युक्त (समस्त पदार्थ रहने पर भी) मूर्ख लोभी मनुष्य बाद में फल पाता है (जीवन में सुख नहीं भोग पाता), वैसे ही जो विषयासक्त अज्ञानी है, वह पीछे फल पाता है (जीवन में सुख नहीं भोग पाता)।

---

* समग्ग—समस्त, युक्त, सहित –पा. स. म., पृ. ८६५

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

सुपात्रदान और विषयों के त्याग का फल समान है—

वत्थुसमग्गो णाणी, सुपत्तदाणी फलं जहा लहदि।
णाणसमग्गो विसयपरिचत्तो लहदि तहा चेव ॥७४॥

अन्वयार्थ – (**जहा**) जैसे (**वत्थुसमग्गो**) समस्त पदार्थों से युक्त (**सुपत्तदाणी**) सुपात्रों को दान देने वाला (**णाणी**) ज्ञानी (**फलं**) फल (**लहदि**) पाता है (**तहा**) वैसे (**चेव**) ही (**विसयपरिचत्तो**) विषयों का त्यागी (**णाणसमग्गो**) ज्ञान से युक्त ज्ञानी (**लहदि**) फल पाता है।

अर्थ—जैसे समस्त पदार्थों से युक्त (समस्त पदार्थ होने पर भी) सुपात्रों को दान देने वाला ज्ञानी फल प्राप्त करता है, वैसा ही फल विषयों का त्यागी ज्ञानी प्राप्त करता है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

रत्नत्रय से लोभ का विरोध–

भू-महिला-कणयादि-लोहाहि-विसहरं कहं पि हवे ।
सम्मत्त-णाण-वेरग्गोसहमंतेण जिणुद्दिट्ठं ।।७५।।

(गाहिनी)

अन्वयार्थ – (**भू**) जमीन (**महिला**) स्त्री (**कणयादि**) स्वर्ण आदि के (**लोहाहि विसहरं**) लोभ रूपी सर्प और विषधर सर्प को (**कहं पि हवे**) चाहे वह सर्प कैसा ही हो (**सम्मत्तणाणवेरग्गोसह मंतेण**) सम्यक्त्व, ज्ञान, वैराग्य रूपी औषधि और मंत्र से वश में किया जा सकता है (**जिणुद्दिट्ठं**) ऐसा जिनेन्द्रदेव ने कहा है ।

अर्थ – भूमि, स्त्री, स्वर्ण आदि के लोभ रूपी सर्प और विषधर सर्प को– चाहे वह सर्प कैसा ही हो–सम्यक्त्व, ज्ञान, वैराग्य (सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र) रूपी औषधि और मन्त्र से (वश में किया जा सकता है), ऐसा जिनेन्द्रदेव ने कहा है ।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0 In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

मुनि-दीक्षा से पूर्व योगी का निग्रह आवश्यक है–

पुव्वं जो पंचिंदिय, तणु-मण-वचि-हत्थ-पाय-मुंडाओ ।
पच्छा सिर मुंडाओ, सिवगदिपहणायगो होदि ।।७६।।

अन्वयार्थ – (**जो**) जो (**पुव्वं**) पहले (**पंचिंदियतणुमण-वचिहत्थपाय-मुंडाओ**) पाँचों इन्द्रियों, शरीर, मन, वचन, हाथ, पैरों को मूंडता है, वश में करता है (**पच्छा**) पश्चात् (**सिर मुंडाओ**) सिर मुँडाता–है, केशलुंचन करता है–वह (**सिवगदि पहणायगो**) मोक्ष-मार्ग का नेता (**होदि**) होता है ।

अर्थ – जो मनुष्य पहले पाँचों इन्द्रियों, शरीर, मन, वचन, हाथ और पैरों को मूंडता हैं (वश में करता है) और पश्चात् सिर मुंडाता है (केशलुंचन करके मुनि-दीक्षा लेता है), वह मोक्ष-मार्ग का नेता होता है ।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

भक्ति के बिना सुगति नहीं–

पदिभत्तिविहीण सदी, भिच्चो जिणसमयभत्तिहीण जण्णो ।
गुरुभत्तिहीण सिस्सो, दुग्गदिमग्गाणुलग्गओ णियदं ।।७७।।

(सिहनी)

अन्वयार्थ – (**पदिभत्तिविहीण**) स्वामी की भक्ति से विहीन (**सदी**) सती और (**भिच्चो**) भृत्य; (**जिणसमयभत्तिहीण**) जिनेन्द्रदेव और शास्त्र की भक्ति से विहीन (**जण्णो**) जैन; (**गुरुभत्तिहीण**) गुरु की भक्ति से विहीन (**सिस्सो**) शिष्य (**णियदं**) नियम से (**दुग्गदिमग्गाणुलग्गओ**) दुर्गति के मार्ग में संलग्न है ।

अर्थ – स्वामी की भक्ति से विहीन सती और भृत्य, जिनेन्द्रदेव और शास्त्र की भक्ति से विहीन जैन; और गुरु की भक्ति से विहीन शिष्य नियम से दुर्गति के मार्ग में संलग्न है ।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0 In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

गुरु-भक्ति के बिना चारित्र निष्फल है—

गुरुभत्तिविहीणाणं, सिस्साणं सव्वसंगविरदाणं ।
ऊसरखेत्ते वविदं सुवीयसमं जाण सव्वणुट्ठाणं ।।७८।।

अन्वयार्थ – (**सव्वसंगविरदाणं**) सब परिग्रह से रहित; किन्तु (**गुरुभत्ति विहीणाणं**) गुरु-भक्ति से विहीन (**सिस्साणं**) शिष्यों के (**सव्वणुट्ठाणं**) सभी अनुष्ठान—जप तप व्रत आदि (**ऊसरखेत्ते**) ऊसर खेत में (**वविदं**) बोये हुए (**सुवीयसमं**) उत्तम बीज के समान (**जाण**) जानो ।

अर्थ – समस्त परिग्रह (बाह्य और आभ्यंतर) से रहित, किन्तु गुरु-भक्ति से विहीन शिष्यों के सभी अनुष्ठान (जप तप व्रत आदि) ऊसर खेत में बोये हुए उत्तम बीज के समान जानो ।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

गुरु-भक्ति के बिना चारित्र निष्फल है–

रज्जं पहाणहीणं, पदिहीणं देसगामरट्ठवलं ।
गुरुभत्तिहीण सिस्साणुट्ठाणं णस्सदे सव्वं ।।७९।।

अन्वयार्थ – (**पहाणहीणं**) प्रधान/राजा से विहीन (**रज्जं**) राज्य, (**पदिहीणं**) स्वामी से विहीन (**देसगामरट्ठबलं**) देश, ग्राम, राष्ट्र और सेना, (**गुरुभत्तिहीण**) गुरु-भक्ति से विहीन (**सिस्सा**) शिष्यों के (**सव्वं**) समस्त (**अणुट्ठाणं**) अनुष्ठान (**णस्सदे**) नष्ट हो जाते हैं ।

अर्थ – प्रधान (राजा) से विहीन राज्य, स्वामी-विहीन देश, ग्राम, राष्ट्र और सेना, तथा गुरु-भक्ति से विहीन शिष्यों के समस्त अनुष्ठान नष्ट हो जाते हैं ।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0 In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

गुरु-भक्ति के बिना चारित्र निष्फल है–

सम्माण विणा रुइ भत्ति विणादाणं दया विणा धम्मो ।
गुरु-भत्ति विणा तव-गुण-चारित्तं णिप्फलं जाण ।।८०।।

अन्वयार्थ – (**सम्माण विणा**) सम्मान-आदरभाव के बिना (**रुइ**) रुचि/प्रेम, (**भत्ति विणा**) भक्ति के बिना (**दाणं**) दान, (**दया विणा**) दया के बिना (**धम्मो**) धर्म, (**गुरु-भत्ति विणा**) गुरु भक्ति के बिना (**तव-गुण-चारित्तं**) तप, गुण, चारित्र (**णिप्फलं**) निष्फल (**जाण**) जानो ।

अर्थ – सम्मान (आदरभाव) के बिना रुचि (प्रेम), भक्ति के बिना दान, दया के बिना धर्म और गुरु के बिना तप, गुण, चारित्र निष्फल जानो ।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

हेयोपादेय-विवेक की आवश्यकता–

हीणादाणवियारविहीणादो बाहिरक्खसोंक्खं हि।
किं तजियं किं भजियं, किं मोंक्खं ण दिट्ठं जिणुद्दिट्ठं ।।८१।।

(उग्गाहा)

अन्वयार्थ – (**हीणा*दाणवियारविहीणादो**) निन्द्य और ग्राह्य का विचार न होने से (**हि**) निश्चय से (**बाहिरक्खसोंक्खं**) बाह्य इन्द्रियों के सुख को ही–सुख मानते हैं (**किं तजियं**) क्या त्याज्य है (**किं भजियं**) क्या उपादेय है (**किं मोंक्खं**) मोक्ष क्या है–उसे (**ण दिट्ठं**) नहीं दखा-जाना (**जिणुद्दिट्ठं**) ऐसा जिनेन्द्रदेव ने कहा है।

अर्थ – निन्द्य और ग्राह्य का विचार न होने से निश्चय से बाह्य इन्द्रियों के सुख को ही (सुख मानते हैं)। क्या त्याज्य है, क्या ग्राह्य है, मोक्ष क्या है, उसे नहीं जाना, ऐसा जिनेन्द्रदेव ने कहा है।

* हीण—निन्द्य —पा. स. म., पृ. ६४८
आदाण—ग्राह्य— ,, ,, पृ. ११५

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0. In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

आत्मदर्शन कर्म-क्षय करती है—

कायकिलेसुववासं, दुद्धरतवयरणकारणं जाण।
तं णियसुद्धप्परुई, परिपुण्णं चेदि कम्मणिम्मूलं ॥८२॥

(उग्गाहा)

अन्वयार्थ – (**कायकिलेसुववासं**) कायक्लेश और उपवास (**दुद्धरतवयरणकारणं**) कठोर तपश्चरण के कारण हैं (**जाण**) ऐसा जानो (**च**) और (**तं**) वे (**णियसुद्धप्परुई**) निज शुद्ध आत्मा की रुचि होने पर (**परिपुण्णं**) समस्त (**कम्मणिम्मूलं**) कर्मों के नाश के कारण होते हैं। (**चेदि**) ऐसा जानो।

अर्थ – कायक्लेश और उपवास कठोर तपश्चरण के कारण होते हैं—ऐसा जानो—और निज शुद्ध आत्मा की रुचि होने पर वे समस्त कर्मों के नाश के कारण होते हैं—ऐसा जानो।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

आत्म-ज्ञान के बिना बाह्य लिंग व्यर्थ है–

कम्म ण खवेदि जो परब्रह्म* ण जाणदि सम्मउम्मुक्को ।

अत्थ ण तत्थ ण जीवो, लिंगं घेत्तूण किं करेदि ।।८३।।

अन्वयार्थ – (**जो**) जो (**परब्रह्म**) आत्मा परमात्मा को (**ण**) नहीं (**जाणदि**) जानता है, और (**सम्मउम्मुक्को**) सम्यक्त्व से रहित है, वह (**कम्म**) कर्मों का (**ण खवेदि**) क्षय नहीं करता (**जीवो**) ऐसा जीव (**अत्थ ण तत्थ ण**) न यहाँ का है, न वहाँ का है वह (**लिंगं**) लिंग को (**घेत्तूण**) ग्रहण करके (**किं करेदि**) क्या करता है ?

अर्थ – जो परब्रह्म (आत्मा, परमात्मा) को नहीं जानता और सम्यक्त्व से रहित है, वह कर्मों का नाश नहीं करता है । ऐसा जीव न यहाँ का है, न वहाँ का है । वह लिंग (बाह्यवेश) को धारण करके क्या करता है ?

---

* बम्ह ।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

आत्म-ज्ञान के बिना बाह्य लिंग व्यर्थ है–

अप्पाणं पि ण पेॅच्छदि, ण मुणदि ण वि सद्दहदि ण भावेदि ।
बहुदुक्खभारमूलं, लिंगं घेॅत्तूण किं करेदि ।।८४।।

अन्वयार्थ – जो साधु (**अप्पाणं**) आत्मा को (**पि**) भी (**ण पेॅच्छदि**) नहीं देखता है (**ण मुणदि**) न उसका मनन करता है (**ण वि सद्दहदि**) न ही श्रद्धान करता है (**ण भावेदि**) न भावना करता है तो वह (**बहुदुक्खभारमूलं**) अत्यन्त दु:ख-भार के कारण (**लिंगं**) बाह्य वेश को (**घेॅत्तूण**) धारण करके (**किं करेदि**) क्या करता है ?

अर्थ – जो साधु अपनी आत्मा को भी नहीं देखता है, न उसका मनन करता है, न ही श्रद्धान करता है, न भावना करता है, तो वह अत्यन्त दु:ख-भार के कारणस्वरूप बाह्य वेश को धारण करके क्या करता है ?

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

आत्म-ज्ञान के बिना दुःख है–

जाव ण जाणदि अप्पा, अप्पाणं दुक्खमप्पणो ताव ।
तेण अणंतसुहाणं, अप्पाणं भावए जोई ।।८५।।

अन्वयार्थ – (जाव) जब तक (अप्पा) आत्मा (अप्पाणं) आत्मा को (ण जाणदि) नहीं जानता है (ताव) तब तक (अप्पणो) आत्मा को (दुक्खं) दुःख है (तेण) इसलिए (जोई) योगी/साधु को (अणंतसुहाणं) अनन्त सुख स्वभावी (अप्पाणं) आत्मा की (भावए) भावना करनी चाहिये ।

अर्थ – जब तक आत्मा को (अपने आपको) नहीं जानता है, तब तक आत्मा को दुःख है; इसलिए योगी (साधु) को अनन्तसुखस्वभावी आत्मा की भावना करनी चाहिये ।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

आत्मस्वरूप प्राप्त होने पर सम्यक्त्व होता है–

णियतच्चुवलद्धि विणा, सम्मत्तुवलद्धि णत्थि णियमेण ।
सम्मत्तुवलद्धि विणा, णिव्वाणं णत्थि णियमेण ॥८६॥

अन्वयार्थ – (**णियतच्चुवलद्धि विणा**) निजतत्त्व/आत्मस्वरूप की प्राप्ति के बिना (**णियमेण**) नियम से (**सम्मत्तुवलद्धि**) सम्यक्त्व की प्राप्ति (**णत्थि**) नहीं होती (**सम्मत्तुवलद्धि विणा**) सम्यक्त्व की प्राप्ति के बिना (**णियमेण**) नियम से (**णिव्वाणं**) निर्वाण (**णत्थि**) नहीं होता ।

अर्थ – निज तत्त्व (आत्मस्वरूप) की प्राप्ति के बिना नियम से सम्यक्त्व की प्राप्ति नहीं होती । सम्यक्त्व की उपलब्धि के बिना नियम से निर्वाण नहीं होता ।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

ज्ञान के बिना तप की शोभा नहीं–

सालविहीणो राओ, दाणदयाधम्मरहिद गिहिसोहा ।
णाणविहीण तवो वि य, जीव विणा देहसोहं ण ॥८७॥

अन्वयार्थ – (**सालविहीणो**) दुर्ग के बिना (**राओ**) राजा की (**दाणदयाधम्मरहिद**) दान, दया, धर्म से रहित (**गिहिसोहा**) गृहस्थ की शोभा नहीं होती (**य**) और (**णाणविहीण तवो वि**) ज्ञान से रहित तप की भी; और (**जीव विणा**) जीव के बिना (**देहसोहं**) देह की शोभा (**ण**) नहीं होती ।

अर्थ – दुर्ग के बिना राज्य की और दान, दया, धर्म के बिना गृहस्थ की शोभा नहीं होती । ज्ञान से रहित तप की और जीव के बिना देह की शोभा नहीं होती ।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri
परिग्रही साधु दुःख पाता है–

मक्खी सिलिम्मि पडिदो, मुवदि जहा तह परिग्गहे पडिदो ।
लोही मूढो खवणो, कायकिलेसेसु अण्णाणी ।।८८।।

अन्वयार्थ – (**जहा**) जैसे (**सिलिम्मि**) श्लेष्मा में (**पडिदो**) गिरी हुई (**मक्खी**) मक्खी (**मुवदि**) मर जाती है (**तह**) उसी प्रकार (**परिग्गहे**) परिग्रह में (**पडिदो**) पड़ा हुआ (**लोही**) लोभी (**मूढो**) मूढ़ (**अण्णाणी**) अज्ञानी (**खवणो**) साधु (**कायकिलेसेसु**) काय-क्लेश में मरता है ।

अर्थ – जैसे श्लेष्मा में गिरी हुई मक्खी (दुःख भोगती हुई) मर जाती है, उसी प्रकार परिग्रह में पड़ा हुआ (आसक्त) लोभी, मूढ़, अज्ञानी साधु कायक्लेश में मरता है ।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0 In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

ज्ञानाभ्यास से मोक्ष होता है–

णाणब्भास विहीणो, सपरं तच्चं ण जाणदे किं पि।
झाणं तस्स ण होदि हु, ताव ण कम्मं खवेदि ण हु मोक्खं ॥८९॥

(उग्गाहा)

अन्वयार्थ – (**णाणब्भास विहीणो**) ज्ञानाभ्यास से विहीन-जीव (**सपरं**) स्व और पर (**तच्चं**) तत्त्व को (**किं पि**) कुछ भी (**ण**) नहीं (**जाणदे**) जानता है (**तस्स**) उसके (**हु**) निश्चय से (**झाणं**) ध्यान (**ण होदि**) नहीं होता है (**ताव**) तब तक (**कम्मं**) कर्मों को (**ण खवेदि**) नष्ट नहीं करता (**ण हु मोक्खं**) न ही मोक्ष होता है।

अर्थ – ज्ञानाभ्यास से विहीन (जीव) स्व-पर तत्त्व को कुछ भी नहीं जानता है। निश्चय ही उसके ध्यान नहीं होता है। तब तक कर्मों को नष्ट नहीं करता और न ही मोक्ष होता है।

भावार्थ – ज्ञानाभ्यास के बिना स्व-पर की पहचान नहीं होती। स्वपर की पहचान के बिना ध्यान नहीं होता। ध्यान के बिना कर्मों का नाश नहीं होता। कर्मों का नाश किये बिना मोक्ष नहीं होता।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

स्वाध्याय ही ध्यान है–

अज्झयणमेव झाणं, पंचेंदियणिग्गहं कसायं पि।
तत्तो पंचमयाले, पवयणसारब्भासमेव कुज्जाहो ॥९०॥

(गाहिणी)

अन्वयार्थ – (**अज्झयणमेव**) शास्त्रों का अध्ययन ही (**झाणं**) ध्यान है–उसीसे (**पंचेंदियणिग्गहं**) पंचेन्द्रियों का निग्रह (**कसायं पि**) और कषायों का भी निग्रह होता है (**तत्तो**) इसलिए (**पंचमयाले**) इस पंचम काल में (**पवयणसारब्भासमेव**) प्रवचनसार-जिनागम का ही अभ्यास (**कुज्जाहो***) करना चाहिये।

अर्थ – (जिनागम का) अध्ययन ही ध्यान है। (उसी से) पंचेन्द्रियों का और कषायों का भी निग्रह होता है; इसलिए इस पंचम काल में प्रवचनसार (जिनागम) का ही अभ्यास करना चाहिये।

---

* कुज्जाहो–विधि लिङ्ग में कुज्जाह बनता है। छन्द की दृष्टि से कुज्जाहो बना दिया है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

ज्ञान ही धर्मध्यान है–

पावारंभणिवित्ती, पुण्णारंभे पउत्तिकरणं पि।
णाणं धम्मज्झाणं, जिणभणिदं सव्वजीवाणं ॥९१॥

अन्वयार्थ – (**पावारंभणिवित्ती**) पापारंभ–हिंसादि कार्य से निवृत्ति–और (**पुण्णारंभे**) पुण्य कार्यों में (**पउत्तिकरणं पि**) प्रवृत्ति करने का कारण (**णाणं**) ज्ञान ही है–इसलिए ज्ञान को ही (**सव्वजीवाणं**) सब जीवों के लिए (**धम्मज्झाणं**) धर्मध्यान (**जिणभणिदं**) जिनेन्द्रदेव ने कहा है।

अर्थ – पापारंभ (हिंसादि कार्य) से निवृत्ति और पुण्यकार्यों में प्रवृत्ति का कारण ज्ञान ही है। (इसलिए ज्ञान को ही) सब जीवों के लिए जिनेन्द्रदेव ने धर्मध्यान कहा है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

श्रुतज्ञान के बिना सम्यक् तप नहीं–

सुदणाणब्भासं जो ण कुणदि सम्मं ण होदि तवयरणं।
कुव्वंतो मूढमदी, संसारसुहाणुरत्तो सो ॥९२॥

अन्वयार्थ – (**जो**) जो (**सुदणाणब्भासं**) श्रुतज्ञान/जिनागम का अभ्यास (**ण कुणदि**) नहीं करता है–उसके (**तवयरणं**) तपश्चरण (**सम्मं**) सम्यक् (**ण होदि**) नहीं होता है (**कुव्वंतो**) श्रुतज्ञान का अभ्यास किये विना तपश्चरण करने वाला (**सो मूढमदी**) वह अज्ञानी (**संसारसुहाणुरत्तो**) सांसारिक सुखों में अनुरक्त है।

अर्थ – जो जिनागम का अभ्यास नहीं करता है, उसके सम्यक् तपश्चरण नहीं होता है। (श्रुतज्ञान का अभ्यास किये बिना तपश्चरण) करने वाला वह अज्ञानी सांसारिक सुखों में अनुरक्त है।

 Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

मुनि तत्त्व-विचार में लीन रहते हैं–

तच्चवियारणसीलो, मोॅक्खपहाराहणासहावजुदो ।
अणवरयं धम्मकहापसंगओ होदि मुणिराओ ।।९३।।

अन्वयार्थ – (**मुणिराओ**) मुनिराज (**तच्चवियारणसीलो**) तत्त्व की विचारणा करने वाले (**मोॅक्खपहाराहणासहाव जुदो**) मोक्ष-पथ की आराधना के स्वभाव वाले और (**अणवरयं**) निरन्तर (**धम्म-कहापसंगओ***) धर्म-कथाओं के परिचायक (**होदि**) होते हैं ।

अर्थ – मुनिराज तत्त्व की विचारणा करने वाले, मोक्ष-पथ की आराधना के स्वभाव वाले और निरन्तर धर्म-कथाओं के परिचायक हैं ।

---

* पसंग—परिचय - पा. स. म., पृ. ५७८

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

मुनि की धर्ममय प्रवृत्ति–

विकहादिविप्पमुक्को, आहाकम्मादि विरहिदो णाणी ।
धम्मुद्देसणकुसलो, अणुपेहाभावणाजुदो जोई ॥९४॥

(उग्गाहा)

अन्वयार्थ – (**जोई**) योगी-मुनिराज (**विकहादिविप्पमुक्को**) विकथा आदि से पूर्णतः मुक्त होता है (**आहाकम्मादि विरहिदो**) अधःकर्म आदि से रहित होता है; (**णाणी**) सम्यक्ज्ञानी होता है (**धम्मुद्देसणकुसलो**) धर्मोपदेश देने में कुशल होता है; और (**अणुपेहाभावणाजुदो**) बारह अनुप्रेक्षाओं के चिन्तन में निरत रहता है ।

अर्थ – योगी (मुनिराज) विकथा आदि से पूर्णतः मुक्त होता है, अधःकर्म आदि से रहित होता है, सम्यक्ज्ञानी होता है, धर्मोपदेश देने में कुशल होता है और बारह अनुप्रेक्षाओं के चिन्तन में निरत रहता है ।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

मुनि का स्वरूप–

णिंदावंचणदूरो, परिसह-उवसग्ग-दुक्खसहमाणो।
सुहझाणज्झयणरदो, गदसंगो होदि मुणिराओ ॥९५॥

अन्वयार्थ – (**मुणिराओ**) मुनिराज (**णिंदावंचणदूरो**) निन्दा और वंचना से दूर रहते हैं (**परिसह-उवसग्ग-दुक्खसहमाणो**) परीषह, उपसर्ग और दुःखों को सहन करते हैं (**सुहझाणज्झयणरदो**) शुभ ध्यान और अध्ययन में निरत रहते हैं (**गदसंगो**) अन्त:बाह्य परिग्रह से रहित (**होदि**) होते हैं।

अर्थ – मुनिराज निन्दा और वंचना से दूर रहते हैं; परीषह, उपसर्ग और दुःखों को सहन करते हैं; शुभ ध्यान और अध्ययन में निरत रहते हैं और अन्तःबाह्य परिग्रह से रहित होते हैं।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

मुनि योगी होता है–

अवियप्पो णिद्दंदो, णिम्मोहो णिक्कलंकओ णियदो।
णिम्मलसहावजुदो, जोई सो होदि मुणिराओ ॥९६॥

अन्वयार्थ – जो (अवियप्पो) विकल्परहित (णिद्दंदो) निर्द्वन्द्व (णिम्मोहो) मोहरहित (णिक्कलंकओ) निष्कलंक (णियदो) नियत (णिम्मलसहावजुदो) निर्मल स्वभाव वाला; और (जोई) योगी होता है (सो) वह (मुणिराओ) मुनिराज (होदि) होता है।

अर्थ – जो विकल्परहित, निर्द्वन्द्व, मोहरहित, निष्कलंक, नियत, निर्मल स्वभाव वाला और योगी होता है, वह मुनिराज होता है।

 Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

मिथ्यातप से मुक्ति नहीं मिलती–

तिव्वं कायकिलेसं, कुव्वंतो मिच्छभावसंजुत्तो।
सव्वण्हुवदेसे सो, णिव्वाणसुहं ण गच्छेदि ।।९७।।

अन्वयार्थ – जो (**तिव्वं**) तीव्र (**कायकिलेसं**) कायक्लेश (**कुव्वंतो**) करता हुआ भी यदि (**मिच्छभावसंजुत्तो**) मिथ्यात्व-भाव से युक्त है, तो (**सो**) वह (**सव्वण्हुवदेसे**) सर्वज्ञदेव के उपदेश में (**णिव्वाणसुहं**) मोक्ष-सुख को (**ण गच्छेदि**) प्राप्त नहीं करता।

अर्थ – जो तीव्र कायक्लेश करता हुआ भी (यदि) मिथ्यात्व-भाव से युक्त है, तो वह सर्वज्ञदेव के उपदेश में मोक्ष-सुख को प्राप्त नहीं करता।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

रागी को आत्म-दर्शन नहीं होता—

रायादिमलजुदाणं, णियप्परूवं ण दिस्सदे किं पि।
समलादरिसे रूवं, ण दिस्सदे जह तहा णेयं ॥९८॥

अन्वयार्थ — (**रायादिमलजुदाणं**) रागादि मल से युक्त जीवों को (**णियप्परूवं**) अपना आत्मस्वरूप (**किं पि**) कुछ भी (**णि दिस्सदे**) दिखायी नहीं देता (**जह**) जैसे (**समलादरिसे**) मलिन दर्पण में (**रूवं**) रूप (**ण दिस्सदे**) दिखायी नहीं देता (**तहा**) वैसा ही (**णेयं**) समझना चाहिये।

अर्थ — रागादि मल से युक्त जीवों को अपना आत्मस्वरूप कुछ भी दिखायी नहीं देता। जैसे मलिन दर्पण में रूप दिखायी नहीं देता; उसी प्रकार (इसे) समझना चाहिये।

 Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

असंयमी मुनि दीर्घ संसारी होता है–

दंडत्तय सल्लत्तय, मंडिदमाणो असूयगो साहू।
भंडण-जायणसीलो, हिंडदि सो दीहसंसारे ।।९९।।

अन्वयार्थ – जो (**साहू**) साधु (**दंडत्तय**) तीन दण्ड–मन, वचन, काय को वश में नहीं करता, (**सल्लत्तय**) तीन शल्य–माया, मिथ्यात्व, निदान इनसे युक्त (**मंडिदमाणो**) अभिमानी (**असूयगो**) ईर्ष्यालु और (**भंडण जायणसीलो**) कलह करने वाला, याचना करने वाला है (**सो**) वह (**दीहसंसारे**) दीर्घ संसार में (**हिंडदि**) भ्रमण करता है।

अर्थ – जो साधु तीन दण्ड (मन, वचन, काय को वश में न रखना), तीन शल्य (माया, मिथ्यात्व, निदान) से युक्त, अभिमानी, ईर्ष्यालु, कलह करने वाला और याचना करने वाला है, वह दीर्घ संसार में भ्रमण करता है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

सम्यक्त्वहीन साधु की पहचान–

देहादिसु अणुरत्ता, विसयासत्ता कसायसंजुत्ता ।
आदसहावे सुत्ता, ते साहू सम्मपरिचत्ता ।।१००।।

अन्वयार्थ –(देहादिसु अणुरत्ता) देह आदि में अनुरक्त **(विसयासत्ता)** विषयों में आसक्त **(कसायसंजुत्ता)** कषाय से युक्त **(आदसहावे सुत्ता)** आत्म-स्वभाव में सोये हुए प्रमादी हैं **(ते साहू)** ऐसे साधु **(सम्मपरिचत्ता)** सम्यक्त्व से रहित हैं ।

अर्थ – देह आदि में अनुरक्त, विषयों में आसक्त, कषाय से युक्त, आत्म-स्वभाव में सोये हुए (प्रमादी)–ऐसे साधु सम्यक्त्व से रहित हैं ।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0 In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

जैनधर्म के विराधक साधुओं के लक्षण–

आरंभे धणधण्णे, उवयरणे कंखिया तहासूया ।
वयगुणसीलविहीणा, कसायकलहप्पिया मुहरा ॥१०१॥
संघविरोहकुसीला, सच्छंदा रहिदगुरुकुला मूढा ।
रायादिसेवया ते, जिणधम्मविराहया साहू ॥१०२

अन्वयार्थ – जो (साहू) साधु (आरंभे) आरम्भ में (धणधण्णे) धन-धान्य में (उवयरणे) उपकरणों में (कंखिया) आकांक्षा रखते हैं (तहा) तथा (असूया) ईर्ष्यालु हैं (वयगुणसीलविहीणा) व्रत, गुण, शील से रहित हैं (कसायकलहप्पिया) कषायप्रिय और कलहप्रिय हैं (मुहरा) वाचाल हैं (संघविरोहकुसीला) संघ का विरोध करते हैं, कुशील हैं (सच्छंदा) स्वच्छन्द हैं (रहिदगुरुकुला) गुरु के समीप नहीं रहते हैं (मूढा) अज्ञानी हैं (रायादिसेवया) राजा आदि की सेवा करते हैं (ते) वे साधु (जिणधम्मविराहया) जैनधर्म के विराधक हैं।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अर्थ—जो साधु आरम्भ, धन-धान्य, उपकरणों में आकांक्षा रखते हैं तथा ईर्ष्यालु हैं; व्रत, गुण, शील से रहित है; कषायप्रिय और कलहप्रिय है; वाचाल हैं; संघ का विरोध करते हैं; कुशील हैं; स्वच्छन्द है; गुरु के समीप नहीं रहते हैं; अज्ञानी हैं और राजा आदि की सेवा करते हैं, वे साधु जैनधर्म के विराधक हैं।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

साधुओं के लिए दूषण योग्य कार्य–

जोइस-वेज्जा-मंतोवजीवणं वायवस्स ववहारं ।
धणधण्णपरिग्गहणं समणाणं दूसणं होदि ।।१०३।।

अन्वयार्थ – (जोइस-वेज्जा-मंतोवजीवणं) ज्योतिष, वैद्यक, मंत्र विद्या द्वारा उपजीविका चलाना (वायवस्स ववहारं) वातविकार का व्यापार–भूत-प्रेत की झाड़-फूंक का व्यापार (धणधण्णपरिग्गहणं) धन-धान्य का प्रतिग्रहण करना–ये काम (समणाणं) श्रमण मुनियों के लिए (दूसणं) दोष (होदि) होते हैं ।

अर्थ–ज्योतिष, वैद्यक, मंत्र-विद्या द्वारा उपजीविका चलाना, भूत-प्रेत की झाड़-फूंक का व्यापार करना, धन-धान्य का प्रतिग्रहण करना–ये काम श्रमण मुनियों के लिए दूषण स्वरूप हैं ।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

सम्यक्त्वहीन साधु—

जे पावारंभरदा, कसायजुत्ता परिग्गहासत्ता।
लोयववहारपउरा, ते साहू सम्मउम्मुक्का ॥१०४॥

अन्वयार्थ – (जे) जो (पावारंभरदा) पाप और आरम्भ में रत हैं (कसायजुत्ता) कषाययुक्त हैं (परिग्गहासत्ता) परिग्रह में आसक्त हैं (लोयववहारपउरा) लोक-व्यवहार में वहुत निमग्न हैं (ते साहू) वे साधु (सम्मउम्मुक्का) सम्यक्त्व से रहित हैं।

अर्थ – जो साधु पाप और आरम्भ में रत हैं, कषाय-युक्त हैं, परिग्रह में आसक्त हैं; और लोक-व्यवहार में वहुत निमग्न हैं, वे सम्यक्त्व से रहित हैं।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

सम्यक्त्वहीन साधु–

ण सहंति इदरदप्पं, थुवंति अप्पाणमप्पमाहप्पं।
जिब्हणिमित्तं कुणंति, कज्जं ते साहु सम्मउम्मुक्का ।।१०५।।

(उग्गाहा)

अन्वयार्थ – जो (**साहु**) साधु (**इदरदप्पं**) दूसरों के बड़प्पन को (**ण सहंति**) नहीं सहते है (**अप्पाणं**) अपनी; और (**अप्पमाहप्पं**) अपने माहात्म्य की (**थुवंति**) प्रशंसा करते रहते हैं (**जिब्हणिमित्तं**) जिह्वा के लिए (**कज्जं**) कार्य (**कुणंति**) करते हैं (**ते**) वे साधु (**सम्मउम्मुक्का**) सम्यक्त्व-रहित हैं।

अर्थ – जो साधु दूसरों के बड़प्पन को सहन नहीं करते हैं, अपनी और अपने माहात्म्य की प्रशंसा करते हैं और जिह्वा के लिए कार्य करते हैं, वे सम्यक्त्व से रहित हैं।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

पापी धर्मात्मा से द्वेष करता है–

चम्मट्ठि-मंसलवलुद्धो सुणहो गज्जदे मुणिं दिट्ठा।
जह तह पाविट्ठो सो धम्मिट्ठं दिट्ठा सगीयट्ठो ॥१०६॥

अन्वयार्थ – (जह) जैसे (चम्मट्ठि-मंसलवलुद्धो) चर्म, अस्थि और मांस खण्ड का लोभी (सुणहो) कुत्ता (मुणिं) मुनि को (दिट्ठा) देखकर (गज्जदे) भोंकता है (तह) उसी प्रकार (पाविट्ठो) जो पापी है (सो) वह (सगीयट्ठो) स्वार्थवश (धम्मिट्ठं) धर्मात्मा को (दिट्ठा) देखकर भोंकता है, कलह करता है।

अर्थ – जैसे चर्म, अस्थि और मांस-खण्ड का लोभी कुत्ता मुनि को देखकर भोंकता है, इसी प्रकार जो पापी है, वह स्वार्थवश धर्मात्मा को देखकर कलह करता है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

मोक्ष-मार्ग में रत साधु–

भुञ्जेदि जहालाहं, लहेदि जइ णाणसंजमणिमित्तं।
झाणज्झयणणिमित्तं, अणयारो मोॅक्खमग्गरदो ॥१०७॥

अन्वयार्थ – (जइ) साधु (जहालाहं) यथालाभ/जो प्राप्त हो गया (भुञ्जेदि) भोजन करता है (णाणसंजमणिमित्तं) ज्ञान और संयम की वृद्धि के लिए तथा (झाणज्झयणणिमित्तं) ध्यान और अध्ययन के निमित्त (लहेदि) ग्रहण करता है (अणयारो) वह साधु (मोॅक्खमग्गरदो) मोक्ष-मार्ग में रत है।

अर्थ – जो साधु यथालाभ (जो प्राप्त हो गया) भोजन (आहार) करता है, ज्ञान और संयम की वृद्धि के लिए तथा ध्यान और अध्ययन के निमित्त; वह मोक्ष-मार्ग में रत है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0 In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

मुनि-चर्या के भेद–

उदरग्गियसमण-मक्खमक्खण-गोयार-सब्भपूरण-भमरं ।
णाऊण तप्पयारे, णिच्चेवं भुञ्जदे भिक्खू ॥१०८॥

अन्वयार्थ – (उदरग्गियसमण-मक्खमक्खण-गोयार-सब्भपूरण-भमरं) उदराग्निशमन, अक्षम्रक्षण, गोचरी, श्वभ्रपूरण और भ्रामरी **(तप्पयारे)** मुनि-चर्या के इन भेदों को **(णाऊण)** जानकर **(भिक्खू)** भिक्षु/साधु **(णिच्चेवं)** नित्य ही **(भुञ्जदे)** आहार ग्रहण करता है ।

अर्थ – उदराग्निशसन, अक्षम्रक्षण, गोचरी, श्वभ्रपूरण और भ्रामरी–मुनिचर्या के इन भेदों को जानकर साधु नित्य ही आहार ग्रहण करता है।

विधि – आचार्यों ने मुनियों के आहार की गाथा में वर्णित पाँच विधियाँ बतायी हैं–

१. उदराग्निशमन – जितने आहार से उदर की अग्नि शान्त हो जाए, उतना ही आहार लेना ।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

२. अक्षम्रक्षण – जैसे गाड़ी को चलाने के लिए उसकी धुरी पर तेल लगाया जाता है, उसी प्रकार इस शरीर को मोक्ष-मार्ग में चलाने के लिए आहार लेना।

३. गोचरी – जैसे गाय की दृष्टि चारे पर रहती हैं. चारा डालने वाले की सुन्दरता या आभूषणों पर नहीं, इसी प्रकार मुनि की दृष्टि आहार पर रहती है, देने वाले की गरीबी-अमीरी पर नहीं।

४. श्वभ्रपूरण – इस पेट को सरस-नीरस चाहे जैसे आहार से भर लना, जैसे गड्ढा कूड़ा-मिट्टी से भरते हैं।

५. भ्रामरी – जैसे भ्रमर फूलों को कष्ट न देते हुए रस ग्रहण करता हैं, ऐसे ही गृहस्थ को कष्ट न देते हुए आहार ग्रहण करना।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0 In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri
धर्म-साधन के लिए मुनि आहार लेता है–

रसरुहिरमंसमेदट्ठिसुकिलमलमुत्तपूयकिमिबहुलं ।
दुग्गंधमसुइचम्ममयमणिच्चमचेदणं पडणं ।।१०९।।
(गाहा)

बहुदुक्खभायणं कम्मकारणं भिण्णमप्पणो देहं ।
तं देहं धम्माणुट्ठाणकारणं चेदि पोसदे भिक्खू ।।११०।।
(गाहिणी)

अन्वयार्थ – (देहं) शरीर (रसरुहिरमंसमेदट्ठिसुकिलमलमुत्तपूयकिमिबहुलं) रस, रुधिर, मांस, मेदा, अस्थि, शुक्र, मल, मूत्र, पीव और कीड़ों से भरा हुआ है (दुग्गंधं) दुर्गन्धियुक्त (असुइ) अपवित्र (चम्ममयं) चर्ममय (अणिच्चं) अनित्य (अचेदणं) अचेतन (पडणं) पतनशील/नाशवान (बहुदुक्खभायणं) अनेक प्रकार के दुक्खों का पात्र (कम्मकारणं) कर्मास्रव का कारण (अप्पणो भिण्णं) आत्मा से भिन्न है (तं देहं) उस देह को (धम्माणुट्ठाणकारणं) धर्मानुष्ठान

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

का कारण है (चेदि) यह मानकर (भिक्खू) भिक्षु/साधु (पोसदे) पालन-पोषण करता है ।

अर्थ – यह शरीर रस, रुधिर, मांस, मेदा, अस्थि, शुक्र, मल, मूत्र, पीव और कीड़ों से भरा हुआ, दुर्गन्धियुक्त, अपवित्र, चर्ममय, अनित्य, अचेतन, नाशवान, अनेक प्रकार के दुक्खों का पात्र, कर्मास्रव का कारण और आत्मा से भिन्न है। (यह देह) धर्मानुष्ठान का कारण है, यह मानकर साधु उस देह का पालन-पोषण करता है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0. In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

मुनि शरीर-पुष्टि के लिए आहार नहीं लेता–

संजमतवझाणज्झयणविणाणए गिण्हदे पडिगहणं।
बज्जदि गिण्हदि भिक्खू, ण सक्कदे वज्जिदुं दुक्खं ।।१११।।

अन्वयार्थ – (**भिक्खू**) साधु (**संजमतवझाणज्झयणविणाणए**) संयम, तप, ध्यान, अध्ययन और विज्ञान के लिए (**पडिगहणं**) प्रतिग्रहण/आहार (**गिण्हदे**) ग्रहण करता है–वह यदि (**बज्जदि**) इन कारणों को छोड़ता है और (**गिण्हदि**) शरीर-पुष्टि के लिए आहार ग्रहण करता है तो वह (**दुक्खं**) दुःख को (**वज्जिदुं**) छोड़ने में (**ण सक्कदे**) समर्थ नहीं होता।

अर्थ – साधु संयम, तप, ध्यान, अध्ययन और विज्ञान (वीतराग-विज्ञान) के लिए आहार ग्रहण करता है। (जो साधु इन कारणों को) छोड़ता है (और शरीर-पुष्टि के लिए) आहार ग्रहण करता है, वह दुःख को छोड़ने में समर्थ नहीं होता।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

मलिन परिणामों से आहार लेने वाला साधु नहीं है–

कोहेण य कलहेण य, जायणसीलेण संकिलेसेण ।
रुद्देण य रोसेण य, भुञ्जदि किं वितरो भिक्खू ।।११२।।

अन्वयार्थ – जो साधु (**कोहेण य**) क्रोध से (**कलहेण य**) कलह करके (**जायणसीलेण**) याचना करके (**संकिलेसेण**) संक्लेश परिणामों से (**रुद्देण य**) रौद्र परिणामों से (**रोसेण य**) और रुष्ट होकर (**भुञ्जदि**) आहार ग्रहण करता है–वह (**किं भिक्खू**) क्या साधु है–वह तो (**वितरो**) व्यन्तर है ।

अर्थ – (जो साधु) क्रोध से, कलह करके, याचना करके, संक्लिष्ट परिणामों से, रौद्र परिणामों से और रुष्ट होकर आहार ग्रहण करता है, वह क्या साधु है ? वह तो व्यन्तर है ।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

मुनि शुद्ध आहार ग्रहण करता है–

दिव्वुत्तरणसरिच्छं, जाणिच्चाहो धरेदि जदि सुद्धो ।
तत्तायसपिंडसमं, भिक्खू तुह पाणिगदपिंडं ।।११३।।

अन्वयार्थ – **(अहो भिक्खू)** हे मुने **(जदि)** यदि **(तुह पाणिगदपिंडं)** तेरे हाथ पर रक्खा हुआ आहार **(तत्तायसपिंडसमं)** तपे हुए लोहे के पिण्ड के समान **(सुद्धो)** शुद्ध है–तो उसे **(दिव्वुत्तरण सरिच्छं)** दिव्य नौका के समान **(जाणिच्चा)** जानकर **(धरेदि)** ग्रहण कर ।

अर्थ – हे मुने ! यदि तेरे हाथ पर रक्खा हुआ आहार तपे हुए लोहे के पिण्ड के समान शुद्ध है तो उसे दिव्य नौका के समान जानकर ग्रहण कर ।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0 In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

पात्र अनेक प्रकार के हैं—

अविरद-देस-महव्वय, आगमरुइणं वियारतच्चण्हं।
पत्तंतरं सहस्सं, णिद्दिट्ठं जिणवरिंदेहिं ।।११४।।

अन्वयार्थ – (**जिणवरिंदेहिं**) जिनेन्द्रदेव ने (**अविरद-देस-महव्वय**) अविरत सम्यग्दृष्टि, देशव्रती श्रावक, महाव्रती मुनि (**आगमरुइणं**) आगम में रुचि रखने वाले; और (**वियारतच्चण्हं**) तत्त्व-विचारकों के भेद से (**पत्तंतरं सहस्सं**) हजारों प्रकार के पात्र (**णिद्दिट्ठं**) बताये हैं।

अर्थ – जिनेन्द्रदेव ने अविरत सम्यग्दृष्टि, देशव्रती श्रावक, महाव्रती मुनि, आगम में रुचि रखने वाले और तत्त्व-विचारकों के भेद से हजारों प्रकार के पात्र बताये हैं।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

मुनि उत्तम पात्र है–

उवसमणिरीहझाणज्झयणादि महागुणा जहा दिट्ठा ।
जेसिं ते मुणिणाहा, उत्तमपत्ता तहा भणिदा ।।११५।।

अन्वयार्थ – (**जेसिं**) जिन मुनियों में (**उवसमणिरीहझाणज्झयणादि**) उपशम, निरीहता, ध्यान, अध्ययन आदि (**महागुणा**) महान् गुण (**जहा**) जैसे (**दिट्ठा**) देखे गये (**तहा**) उसी प्रकार (**ते मुणिणाहा**) वे मुनिराज (**उत्तमपत्ता**) उत्तम पात्र (**भणिदा**) कहे गये हैं ।

अर्थ – जिन मुनियों में उपशम, निरीहता, ध्यान, अध्ययन आदि महान् गुण जैसे देखे गये, उसी प्रकार वे मुनिराज उत्तम पात्र कहे गये हैं ।

भावार्थ – इन गुणों की जैसी-जैसी वृद्धि होती जाती है, वैसी-वैसी पात्रता बढ़ती जाती है ।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0 In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

आत्मज्ञान के बिना तप संसार का कारण है—

ण वि जाणदि जिणसिद्धसरूवं तिविहेण तह णियप्पाणं ।
जो तिव्वं कुणदि तवं, सो हिंडदि दीहसंसारे ॥११६॥

अन्वयार्थ – (**जो**) जो (**जिणसिद्धसरूवं**) जिन-अरहन्त और सिद्ध का स्वरूप (**तह**) तथा (**णियप्पाणं**) अपनी आत्मा को (**वि**) भी (**तिविहेण**) तीन भेद से—बहिरात्मा, अन्तरात्मा, परमात्मा, (**ण जाणदि**) नहीं जानता है; और (**तिव्वं**) तीव्र (**तवं**) तप (**कुणदि**) करता है (**सो**) वह (**दीहसंसारे**) दीर्घ संसार में (**हिंडदि**) भ्रमण करता है ।

अर्थ – जो अरहन्त और सिद्ध का स्वरूप तथा (बहिरात्मा, अन्तरात्मा, परमात्मा) तीन प्रकार के भेद से अपनी आत्मा को भी नहीं जानता, वह दीर्घ संसार में भ्रमण करता है ।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

पात्र-विशेष के लक्षण—

दंसणसुद्धो धम्मज्झाणरदो संगवज्जिदो णिस्सल्लो ।
पत्तविसेसो भणिदो, सो गुणहीणो दु विवरीदो ।।११७।।
(चपला)

सम्मादिगुणविसेसं, पत्तविसेसं जिणेहि णिद्दिट्ठं ।
तं जाणिदूण देदि सुदाणं जो सो हु मोॅक्खरदो ।।११८।।
(गाहा)

अन्वयार्थ — (दंसणसुद्धो) निर्दोष सम्यग्दर्शन वाले (धम्मज्झाणरदो) धर्मध्यान में रत (संगवज्जिदो) परिग्रह-रहित (णिस्सल्लो) तीन शल्यों से रहित (पत्तविसेसो) विशेष पात्र (भणिदो) कहा गया है (गुणहीणो) जो इन गुणों से रहित है (सो दु) वह तो (विवरीदो) विपरीत/अपात्र है ।

(सम्मादिगुणविसेसं) जिसमें सम्यक्त्वादि विशेष गुण हैं—वह (जिणेहि) जिनेन्द्रदेव ने (पत्तविसेसं) विशेष पात्र (णिद्दिट्ठं) कहा

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri
है (जो) जो व्यक्ति (त) उस पात्र-विशेष को (जाणिदूण) जानकर (सुदाणं) सुदानश्च (देय से निॉवह)दि(मे देता है (सो हु)क्खरदो) मोक्ष-मार्ग में रत है।

अर्थ – निर्दोष सम्यग्दर्शन वाले, धर्मध्यान में रत, परिग्रहरहित और तीन शल्यों (माया, मिथ्यात्व, निदान) से रहित विशेष पात्र कहे गये हैं। जो इन गुणों से रहित है, वह तो विपरीत (अपात्र) है।

जिसमें सम्यक्त्वादि विशेष गुण हैं, उसे जिनेन्द्रदेव ने विशेष पात्र कहा है। जो व्यक्ति उस पात्र विशेष को जानकर सुदान देता है, वह निश्चय से मोक्ष-मार्ग में रत है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

रत्नत्रय दो प्रकार का है–

णिच्छयववहारसरूवं जो रयणत्तयं ण जाणदि सो ।
जं कीरदि तं मिच्छारूवं सव्वं जिणुद्दिट्ठं ॥११९॥

अन्वयार्थ – **(जो)** जो **(णिच्छयववहारसरूवं)** निश्चय और व्यवहार स्वरूप वाले **(रयणत्तयं)** रत्नत्रय को **(ण जाणदि)** नहीं जानता है **(सो)** वह **(जं)** जो **(कीरदि)** करता है **(तं सव्वं)** वह सब **(मिच्छारूवं)** मिथ्यारूप है **(जिणुद्दिट्ठं)** ऐसा जिनेन्द्रदेव ने कहा है ।

अर्थ – जो निश्चय और व्यवहार स्वरूप वाले रत्नत्रय को नहीं जानता है, वह जो करता है, वह सब मिथ्यारूप है, यह जिनेन्द्रदेव ने कहा है ।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

सम्यक्त्व के बिना ज्ञान और तप भव-बीज है—

किं जाणिदूण सयलं, तच्चं किच्चा तवं च किं बहुलं ।
सम्मविसोहिविहीणं, णाणतवं जाण भववीयं ॥१२०॥

अन्वयार्थ – (**सयलं**) सम्पूर्ण (**तच्चं**) तत्त्व को (**जाणिदूण**) जानकर भी (**किं**) क्या–लाभ है (**च**) और (**बहुलं**) बहुत (**तवं**) तप (**किच्चा**) करके भी (**किं**) क्या लाभ है (**सम्मविसोहिविहीणं**) सम्यक्त्व की विशुद्धि से विहीन (**णाणतवं**) ज्ञान और तप को (**भववीयं**) संसार का बीज (**जाण**) जानो ।

अर्थ – सम्पूर्ण तत्त्व को जानकर (भी) क्या (लाभ है) और बहुत तप करके (भी) क्या (लाभ है) सम्यक्त्व की विशुद्धि से विहीन ज्ञान और तप को संसार का बीज (कारण) जानो ।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

सम्यक्त्व के बिना चारित्र संसार का कारण है–

वयगुणसीलपरीसहजयं च चरियं तवं छडावसयं।
झाणज्झयणं सव्वं, सम्म विणा जाण भववीयं ॥१२१॥

अन्वयार्थ – **(वयगुणसील परीसहजयं)** व्रत, गुण, शील, परीषह-जय **(चरियं)** चारित्र **(तवं)** तप **(छडावसयं)** षट् आवश्यक **(च)** और **(झाणज्झयणं)** ध्यान और अध्ययन **(सव्वं)** सब **(सम्मविणा)** सम्यक्त्व के बिना **(भववीयं)** भव-बीज **(जाण)** जानो।

अर्थ – व्रत, गुण, शील, परीषह-जय, चारित्र, तप, षट् आवश्यक, ध्यान और अध्ययन यह सब सम्यक्त्व के बिना भव-बीज (संसार का कारण) जानो।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri
चाह से परलोक बिगड़ता है—

खाई-पूया-लाहं, सक्काराइं किमिच्छसे जोई।
इच्छसि जदि परलोयं, तेंहि किं तुज्झ परलोयं ॥१२२॥

अन्वयार्थ – (**जोई**) हे योगी (**जदि**) यदि (**परलोयं**) परलोक को (**इच्छसि**) चाहता है—तो (**खाई-पूया-लाहं**) ख्याति, पूजा, लाभ (**सक्काराइं**) सत्कार आदि (**किमिच्छसे**) क्यों चाहता है (**तेंहि**) उनसे (**किं**) क्या (**तुज्झ**) तुझे (**परलोयं**) परलोक, अच्छा लोक मिलेगा ?

अर्थ – हे योगी ! यदि तू परलोक चाहता है तो ख्याति, पूजा, लाभ, सत्कार आदि क्यों चाहता है; इनसे तुझे क्या परलोक (अच्छा लोक) मिलेगा ?

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

आत्म-रुचि से निर्वाण होता है–

कम्मादविहाव सहावगुणं जो भाविदूण भावेण।
णिय सुद्धप्पा रुच्चदि, तस्सय णियमेण होदि णिव्वाणं ।।१२३।।

(उग्गाहा)

अन्वयार्थ – (**जो**) जो मुनि (**कम्मादविहावसहावगुणं**) कर्मजनित विभाव भाव तथा उनके नाश से आत्मा के स्वाभाविक गुणों को (**भावेण**) भावपूर्वक (**भाविदूण**) मनन करके (**णियसुद्धप्पा**) निज शुद्धात्मा में (**रुच्चदि**) रुचि करता है (**तस्स य**) उसका (**णियमेण**) नियम से (**णिव्वाणं**) निर्वाण (**होदि**) होता है।

अर्थ–जो मुनि कर्मजनित विभाव-भाव (रागद्वेष आदि) तथा (उनके नाश से) आत्मा के (क्षमादि) स्वाभाविक गुणों का भावपूर्वक मनन करके निज शुद्धात्मा में रुचि करता है, उसका नियम से निर्वाण होता है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

कर्मों से मुक्त जीव तत्त्वों को जानता है–

मूलुत्तरुत्तरुत्तर, दव्वादो भावकम्मदो मुक्को।
आसव-बंधण-संवर-णिज्जर जाणेदि किं बहुणा ॥१२४॥

अन्वयार्थ – **(मूलुत्तरुत्तरुत्तर दव्वादो)** मूल प्रकृतियाँ, उत्तर प्रकृतियाँ और उत्तरोत्तर प्रकृति रूप द्रव्यकर्म से **(भावकम्मदो)** भावकर्म से **(मुक्को)** मुक्त जीव **(आसव-बंधणा-संवर-णिज्जर)** आस्रव, वन्ध, संवर और निर्जरा **(जाणेदि)** जानता है **(बहुणा)** वहुत कहने से **(किं)** क्या लाभ है ?

अर्थ – कर्मों की मूल प्रकृतियाँ (ज्ञानावरणादि), उत्तर प्रकृतियाँ (मति-ज्ञानावरणादि) और उत्तरोत्तर (अवग्रहादि) रूप द्रव्य कर्म से (तथा रागद्वेषादि) भावकर्म से मुक्त जीव आस्रव, वन्ध, संवर, और निर्जरा तत्त्वों को जानता है। बहुत कहने से क्या लाभ है ?

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

विषय विरक्त मुनि मुक्त होता है–

विसयविरत्तो मुञ्चदि, विसयासत्तो ण मुञ्चदे जोई ।
बहिरंतरपरमप्पाभेदं जाणाहि किं बहुणा ।।१२५।।

अन्वयार्थ – **(विसयविरत्तो)** विषयों से विरक्त **(जोई)** योगी **(मुञ्चदि)** कर्मों से छूटता है **(विसयासत्तो)** विषयों में आसक्त **(ण मुञ्चदे)** नहीं छूटता **(बहिरंतरपरमप्पाभेदं)** आत्मा के बहिरात्मा, अन्तरात्मा और परमात्मा–इन तीन भेदों को **(जाणाहि)** जानो **(बहुणा)** बहुत कहने से **(किं)** क्या लाभ है ?

अर्थ – विषयों से विरक्त योगी कर्मों से छूटता है, विषयों में आसक्त नहीं छूटता । आत्मा के बहिरात्मा, अन्तरात्मा और परमात्मा इन तीन भेदों (के स्वरूप) को जानो । बहुत कहने से क्या लाभ है ?

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0 In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

बहिरात्मा का लक्षण—

णियअप्पणाणझाणज्झयणसुहामियरसायणं पाणं ।
मोँत्तूणक्खाणसुहं, जो भुञ्जदि सो हु बहिरप्पा ।।१२६।।

अन्वयार्थ – **(जो)** जो मनुष्य **(णियअप्पणाणझाणज्झयण सुहामियरसायणं पाणं)** अपनी आत्मा के ज्ञान, ध्यान, अध्ययन और सुखामृत रसायन का पान **(मोँत्तूण)** छोड़कर **(अक्खाणसुहं)** इन्द्रियों का सुख **(भुञ्जदि)** भोगता है **(सो)** वह **(हु)** निश्चय से **(बहिरप्पा)** बहिरात्मा है ।

अर्थ—जो मनुष्य अपनी आत्मा के ज्ञान, ध्यान, अध्ययन और सुख रूपी अमृत रसायन का पान छोड़कर इन्द्रियों का सुख भोगता है, वह निश्चय से बहिरात्मा है ।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

इन्द्रिय-विषय दुःख-परिणामी हैं–

किंपायफलं पक्कं, विसमिस्सिद मोदगिंदवारुणसोहं।
जिव्हसुहं दिट्ठिपियं, जह तह जाणक्खसोंक्खं पि ॥१२७॥

(चपला)

अन्वयार्थ – **(जह)** जैसे **(पक्कं)** पका हुआ **(किंपायफलं)** किंपाक फल **(विसमिस्सिदमोदगिंदवारुणसोहं)** विषमिश्रित मोदक, इन्द्रायण फल देखने में सुन्दर होते हैं **(जिव्हसुहं)** जीभ को सुख देते हैं **(दिट्ठिपियं)** देखने में भी प्रिय लगते हैं **(तह)** उसी प्रकार **अक्खसोंक्खं पि)** इन्द्रिय-सुखों को भी **(जाण)** जानो।

अर्थ – जैसे पका हुआ किंपाक फल, विषमिश्रित मोदक और इन्द्रायण फल देखने में सुन्दर होते हैं, जीभ को भी सुख देते हैं, दृष्टि को भी प्रिय लगते हैं (किन्तु परिणाम में दुःखदायी होते हैं), उसी प्रकार इन्द्रिय-सुखों को भी जानो।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

पर को निज मानने वाला बहिरात्मा है–

देहकलत्तं पुत्तं, मित्तादि विहावचेदणारूवं।
अप्पसरूवं भावदि, सो चेव हवेदि बहिरप्पा ॥१२८॥

अन्वयार्थ – जो मनुष्य (**देहकलत्तं**) शरीर, स्त्री (**पुत्तं**) पुत्र (**मित्तादि**) मित्र आदि (**विहावचेदणारूवं**) विभाव चेतना राग-द्वेष आदि को (**अप्पसरूवं**) आत्मस्वरूप (**भावदि**) भाता है (**सो चेव**) वही (**बहिरप्पा**) बहिरात्मा (**हवेदि**) होता है।

अर्थ – (जो मनुष्य) शरीर, स्त्री, पुत्र, मित्र आदि और विभाव चेतना (राग-द्वेष आदि वैभाविक परिणामों) को आत्मस्वरूप भाता है/मानता है, वही बहिरात्मा है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri
विषयों में सुख मानने वाला बहिरात्मा है–

इंदियविसयसुहादिसु, मूढमदी रमदि ण लहदि तच्चं।
बहुदुक्खमिदि ण चिंतदि, सो चेव हवेदि बहिरप्पा ॥१२९॥

अन्वयार्थ – (**मूढमदी**) अज्ञानी जीव (**इंदियविसयसुहादिसु**) इन्द्रिय-विषयों के सुख में (**रमदि**) रम जाता है (**बहुदुक्खं**) ये इन्द्रिय-विषय बहुत दुःखदायी हैं (**इदि**) यह (**ण चिंतदि**) विचार नहीं करता–वह (**तच्चं**) तत्त्व को (**ण लहदि**) प्राप्त नहीं करता (**सो चेव**) वही (**बहिरप्पा**) बहिरात्मा (**हवेदि**) होता है।

अर्थ– जो अज्ञानी जीव इन्द्रिय-विषयों के सुख में रम जाता है। ये इन्द्रिय-विषय बहुत दुःखदायी हैं, इस बात का विचार नहीं करता। वह आत्म-तत्त्व को नहीं पाता। वही जीव बहिरात्मा होता है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

इन्द्रिय विषयों को दुःखदायी न मानने वाला बहिरात्मा है–

जं जं अक्खाणसुहं, तं तं तिव्वं करेदि बहुदुक्खं।
अप्पाणमिदि ण चिंतदि, सो चेव हवेदि बहिरप्पा ॥१३०॥

अन्वयार्थ – (जं जं) जितने (अक्खाणसुहं) इन्द्रिय-सुख हैं (तं तं) वे सब (अप्पाणं) आत्मा को (तिव्वं) तीव्र (बहुदुक्खं) अनेक प्रकार के दुःख (करेदि) देते हैं (इदि) इस प्रकार जो (ण चिंतदि) विचार नहीं करता (सो चेव) वही (बहिरप्पा) बहिरात्मा (हवेदि) होता है।

अर्थ – इन्द्रियों के जितने सुख हैं, वे सब आत्मा को अनेक प्रकार के तीव्र दुःख देते हैं। इस बात का जो विचार नहीं करता, वही बहिरात्मा होता है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri
बहिरात्मा की रुचि इन्द्रिय-विषयों में रहती है–

जेंसि अमेज्झमज्झे, उप्पण्णाणं हवेदि तत्थ रुई।
तह बहिरप्पाणं बहिंरिंदिय-विसएसु होदि मदी ॥१३१॥

अन्वयार्थ – (जेंसि) जैसे (अमेज्झमज्झे) विष्टा में (उप्पण्णाणं) उत्पन्न हुआ कीड़ा–उसकी (रुई) रुचि (तत्थ) उसी विष्टा में (हवेदि) होती है (तह) उसी प्रकार (बहिरप्पाणं) बहिरात्मा की (मदी) बुद्धि (बहिंरिंदिय-विसएसु) बाह्य इन्द्रिय-विषयों में (होदि) होती है।

अर्थ – जैसे विष्टा में उत्पन्न हुए कीड़े की रुचि उसी विष्टा में होती है, उसी प्रकार बहिरात्मा की बुद्धि बाह्य इन्द्रिय-विषयों में होती है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

बहिरात्मा को विवेक नहीं होता–

पूयसूयरसाणाण, खारामियभक्खभक्खणाणं पि।
मणु जाइ जहा मज्झे, बहिरप्पाणं तहा णेयं ॥१३२॥

अन्वयार्थ – (**जहा**) जैसे (**मणु जाइ**) मनुष्य जाति (**पूयसूयरसाणाणं**) अपवित्र और खाने योग्य रसों में (**खारामियभक्खभक्खणाणं पि**) क्षार और अमृत, भक्ष्य और अभक्ष्य के (**मज्झे**) मध्य विवेक नहीं करती (**तहा**) उसी प्रकार (**बहिरप्पाणं**) बहिरात्मा को (**णेयं**) जानना चाहिये।

अर्थ – जैसे मनुष्य-जाति अपवित्र (अखाद्य) और खाद्य रसों, क्षार और अमृत, भक्ष्य और अभक्ष्य के मध्य (विवेक नहीं करती), उसी प्रकार बहिरात्मा को जानना चाहिये (वह भी आत्मा और अनात्मा के मध्य विवेक नहीं करता)।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

सिविणे वि ण भुञ्जदि विसयाइं देहादिभिण्णभावमदी ।
भुञ्जदि णियप्परूवो, सिवसुहरत्तो दु मज्झिमप्पो सो ।।१३३।।

(उग्गाहा)

अन्वयार्थ – (**देहादिभिण्णभावमदी**) जो आत्मा को देहादि से भिन्न मानने वाला है (**सिविणे वि**) जो स्वप्न में भी (**विसयाइं**) विषयादि को (**ण भुञ्जदि**) नहीं भोगता है । (**णियप्परूवो**) आत्मा के निज स्वरूप का (**भुञ्जदि**) अनुभव करता है (**दु**) और (**सिवसुहरत्तो**) शिव-सुख में लीन रहता है (**सो**) वह (**मज्झिमप्पो**) मध्यमात्मा-अन्तरात्मा होता है ।

अर्थ – जो आत्मा को देहादि से भिन्न मानता है; जो स्वप्न में भी विषयादि को नहीं भोगता है; जो आत्मा के निज स्वरूप का अनुभव करता है और शिव-सुख में लीन रहता है, वह मध्यमात्मा (अन्तरात्मा) होता है ।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अनादिकालीन वासना नहीं छूटती है–

मलमुत्तघडव्व चिरंवासिद दुव्वासणं ण मुञ्चेदि ।
पक्खालिद सम्मत्तजलो य णाणमियेण पुण्णो वि ।।१३४।।

अन्वयार्थ – यह जीव (**पक्खालिद सम्मत्तजलो**) सम्यक्त्व-रूपी जल से धोने पर (**य**) और (**णाणमियेण**) ज्ञानामृत से (**पुण्णो वि**) पूर्ण होने पर भी (**चिरंवासिद**) चिरकाल से दुर्वासित (**मलमुत्तघडव्व**) मलमूत्र से भरे हुए घड़े के समान (**दुव्वासणं**) दुर्वासना को (**ण मुञ्चेदि**) नहीं छोड़ता है ।

अर्थ – जैसे बहुत समय से दुर्गन्धित मल-मूत्र वाले घड़े से दुर्गन्ध नहीं छूटती है, उसी प्रकार सम्यक्त्व-रूपी जल से धोने पर और ज्ञानामृत से पूर्ण होने पर भी अनादिकालीन दुर्वासना नहीं छूटती है ।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0. In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

सम्यग्दृष्टि अनिच्छापूर्वक भोग भोगता है—

सम्मादिट्ठी णाणी, अक्खाणसुहं कहं पि अणुहवदि ।
केणावि ण परिहरणं, वाहीणविणासणट्ठ भेसज्जं ।।१३५।।

(उग्गाहा)

अन्वयार्थ – (**सम्मादिट्ठी**) सम्यग्दृष्टि (**णाणी**) ज्ञानी (**कहं पि**) किसी प्रकार/अनिच्छापूर्वक (**अक्खाणसुहं**) इन्द्रियों के सुख का (**अणुहवदि**) अनुभव करता है; जैसे (**वाहीणविणासणट्ठ**) रोग दूर करने के लिए (**भेसज्जं**) औषधि (**केणावि**) किसी के द्वारा (**ण परिहरणं**) नहीं छोड़ी जाती ।

अर्थ – सम्यग्दृष्टि ज्ञानी किसी प्रकार (अनिच्छापूर्वक) इन्द्रियों के सुख का अनुभव करता है; जैसे रोग दूर करने के लिए कोई औषधि नहीं छोड़ता (इच्छा न होने पर भी रोग दूर करने के लिए औषधि लेनी पड़ती है) ।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अन्तरात्मा बनो, परमात्म-पद की भावना करो–

किं बहुणा हो तजि बहिरप्पसरूवाणि सयलभावाणि ।
भजि मज्झिम परमप्पा वत्थुसरूवाणि भावाणि ।।१३६।।

अन्वयार्थ – (**किं बहुणा**) अधिक कहने से क्या लाभ है (**हो**) हे भव्य ! (**बहिरप्पसरूवाणि**) बहिरात्मस्वरूप (**सयलभावाणि**) समस्त भावों को (**तजि**) छोड़ और (**मज्झिमपरमप्पा**) मध्यमात्मा और परमात्मा के (**वत्थुसरूवाणि**) यथार्थ स्वरूप सम्बन्धी (**भावाणि**) भावों को (**भजि**) भज ।

अर्थ – अधिक कहने से क्या लाभ है । (संक्षेप में) हे भव्य ! बहिरात्म-स्वरूप समस्त भावों को छोड़ और अन्तरात्मा तथा परमात्मा के वस्तुस्वरूप सम्बन्धी भावों को भज ।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

बहिरात्मभाव दुःख के कारण हैं
CC-0. In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

चउगदि-संसारगमणकारणभूदाणि दुक्खहेदूणि ।
ताणि हवे बहिरप्पा, वत्थुसरूवाणि भावाणि ॥१३७॥

अन्वयार्थ – (**बहिरप्पा**) बहिरात्मा के (**वत्थुसरूवाणि भावाणि**) वस्तुस्वरूप-सम्बन्धी जो भाव हैं (**ताणि**) वे सब (**चउगदि-संसारगमणकारणभूदाणि**) चतुर्गति रूप संसार-परिभ्रमण के कारण हैं; और (**दुक्खहेदूणि**) दुःख के कारण (**हवे**) होते हैं।

अर्थ – बहिरात्मा के वस्तुस्वरूप-सम्बन्धी जो भाव हैं, वे सब चतुर्गति-रूप संसार-परिभ्रमण और दुःख के कारण हैं ।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अन्तरात्मा के भाव मोक्ष और पुण्य के कारण हैं—

मोंक्खगदिगमणकारणभूदाणि पसत्थपुण्णहेदूणि ।
ताणि हवे दुविहप्पा, वत्थुसरूवाणि भावाणि ।।१३८।।

अन्वयार्थ – (दुविहप्पा) अन्तरात्मा और परमात्मा के (वत्थुसरूवाणि भावाणि) वस्तुस्वरूप-सम्बन्धी जो भाव हैं (ताणि) वे सब (मोंक्खगदिगमणकारणभूदाणि) मोक्षगति में ले जाने के कारण-भूत-और (पसत्थपुण्णहेदूणि) प्रशस्त पुण्य के कारण (हवे) होते हैं ।

अर्थ – अन्तरात्मा और परमात्मा के वस्तुस्वरूप-सम्बन्धी जो भाव होते हैं वे सब मोक्षगति में ले जाने, और प्रशस्त पुण्य के कारण होते हैं ।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

स्व-परसमयज्ञ ही मोक्ष पाता हैं–

दव्वगुणपज्जयेंहि, जाणदि परसगसमयादिविभेदं।
अप्पाणं जाणदि सो, सिवगदिपहणायगो होदि ॥१३९॥

अन्वयार्थ – जो (**परसगसमयादिविभेदं**) स्वसमय और परसमय आदि के भेद को (**दव्वगुणपज्जयेंहि**) द्रव्य-गुण-पर्याय से (**जाणदि**) जानता है (**सो**) वह (**अप्पाणं**) अपनी आत्मा को (**जाणदि**) जानता है; वही (**सिवगदिपहणायगो**) शिवगति के मार्ग का नायक (**होदि**) होता है।

अर्थ – जो स्वसमय और परसमय आदि के भेद को द्रव्य-गुण-पर्यायों से जानता है, वह अपनी आत्मा को जानता है। वह मोक्ष-मार्ग का नेता होता है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

केवल परमात्मा स्वसमय हैं–

बहिरंतरप्पभेदं, परसमयं भण्णदे जिणिंदेहिं ।
परमप्पा सगसमयं, तब्भेदं जाण गुणठाणे ।।१४०।।

अन्वयार्थ – (**जिणिंदेहिं**) जिनेन्द्र भगवान ने (**बहिरंतरप्पभेदं**) वहिरात्मा और अन्तरात्मा इन भेदों को (**परसमयं**) परसमय (**भण्णदे**) कहा है (**परमप्पा**) परमात्मा (**सगसमयं**) स्वसमय है (**तब्भेदं**) उनके भेद (**गुणठाणे**) गुणस्थानों की अपेक्षा (**जाण**) जानो ।

अर्थ – जिनेन्द्र भगवान ने बहिरात्मा और अन्तरात्मा को परसमय कहा है और परमात्मा स्वसमय है । उनके भेद गुणस्थानों की अपेक्षा जानो ।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

गुणस्थानों के अनुसार आत्मा का वर्गीकरण–

मिस्सो त्ति बाहिरप्पा, तरतमया तुरियं अंतरप्प जहण्णो ।
संतो त्ति मज्झिमंतर खीणुत्तम परम जिणसिद्धा ।।१४१।।

अन्वयार्थ – (**मिस्सो**) प्रथम, द्वितीय और तृतीय गुणस्थान वाले (**त्ति**) ये (**बाहिरप्पा**) बहिरात्मा हैं (**तरतमया**) तरतमता से (**तुरियं**) चतुर्थ गुणस्थानवर्ती (**जहण्णो**) जघन्य (**अंतरप्प**) अन्तरात्मा हैं (**संतो त्ति**) पाँचवें से उपशान्त मोह/ग्यारहवें गुणस्थान तक (**मज्झिमंतर**) मध्यम अन्तरात्मा हैं; (**खीणुत्तम**) क्षीणमोह/बारहवें गुणस्थान वाले उत्तम अन्तरात्मा हैं (**परमजिणसिद्धा**) जिन/तेरहवें और चौदहवें गुणस्थानवर्ती और सिद्ध परमात्मा हैं।

अर्थ – मिश्र (प्रथम, द्वितीय, तृतीय गुणस्थान वाले) बहिरात्मा हैं। तरतमता से (क्रमशः विशुद्धि की तरतमता से) चतुर्थ गुणस्थानवर्ती जघन्य अन्तरात्मा हैं। पाँचवें से उपशान्त मोह (ग्यारहवें गुणस्थान) तक मध्यम अन्तरात्मा हैं। क्षीणमोह (बारहवें गुणस्थान वाले) उत्तम अन्तरात्मा हैं। जिन (तेरहवें और चौदहवें गुणस्थानवर्ती) और सिद्ध परमात्मा हैं।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri
दोषों के त्याग से मुक्ति होती है–

मूढत्तय सल्लत्तय, दोसत्तयदंड गारवत्तयेहि।
परिमुक्को जोई सो, सिवगदिपहणायगो होदि ॥१४२॥

अन्वयार्थ – जो (**जोई**) योगी (**मूढत्तय**) तीन मूढ़ताओं (**सल्लत्तय**) तीन शल्यों (**दोसत्तय**) तीन दोषों (**दंड गारवत्तयेहि**) तीन दण्डों और तीन गारवों से (**परिमुक्को**) परिमुक्त/रहित होता है (**सो**) वह (**सिवगदिपहणायगो**) शिवगति के मार्ग का नायक (**होदि**) होता है।

अर्थ – जो योगी तीन मूढ़ताओं, तीन शल्यों, तीन दोषों, तीन दण्डों और तीन गारवों से रहित होता है, वह मोक्ष-मार्ग का नेता होता है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

आत्म-विशुद्धि से मुक्ति मिलती है–

रयणत्तय-करणत्तय-जोगत्तय-गुत्तित्तय विसुद्धेहि ।
संजुत्तो जोई सो, सिवगदिपहणायगो होदि ।।१४३।।

अन्वयार्थ – जो (**जोई**) योगी (**रयणत्तय**) रत्नत्रय (**करणत्तय**) तीन कारणों (**जोगत्तय**) तीन योगों (**गुत्तित्तय विसुद्धेहि**) तीन गुप्तियों की विशुद्धि से (**संजुत्तो**) संयुक्त है (**सो**) वह (**सिवगदि पहणायगो**) शिवगति के मार्ग का नायक (**होदि**) होता है ।

अर्थ – जो योगी रत्नत्रय, तीन कारणों, तीन योगों, तीन गुप्तियों की विशुद्धि से युक्त है, वह मोक्ष-मार्ग का नेता होता है ।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri
वीतराग योगी को मुक्ति मिलती है–

जिणलिंगहरो जोई, विराय-सम्मत्तसंजुदो णाणी।
परमोवेंक्खाइरियो, सिवगदिपहणायगो होदि ।।१४४।।

अन्वयार्थ – (**जिणलिंगहरो**) जिनमुद्रा का धारक (**विराय-सम्मत्तसंजुदो**) वैराग्य और सम्यक्त्व से संयुक्त (**णाणी**) ज्ञानी और (**परमोवेंक्खाइरियो**) परम उपेक्षा–वीतराग भाव का धारक–ऐसा (**जोई**) योगी (**सिवगदिपहणायगो**) मोक्ष-मार्ग का नेता (**होदि**) होता है।

अर्थ – जिनमुद्रा का धारक, वैराग्य और सम्यक्त्व से संयुक्त, ज्ञानी और परम उपेक्षा (वीतराग भाव) का धारक–ऐसा योगी मोक्ष-मार्ग का नेता होता है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

शुद्धोपयोगी को मुक्ति मिलती है–

बहिरब्भंतरगंथविमुक्को सुद्धोपजोयसंजुत्तो ।
मूलुत्तरगुणपुण्णो, सिवगदिपहणायगो होदि ।।१४५।।

अन्वयार्थ – (**बहिरब्भंतर गंथविमुक्को**) बाह्य-आभ्यन्तर परिग्रह से रहित (**सुद्धोपजोयसंजुत्तो**) शुद्धोपयोग से संयुक्त और (**मूलुत्तर-गुणपुण्णो**) मूल और उत्तर गुणों से युक्त योगी (**सिवगदिपहणायगो**) शिवगति के मार्ग का नायक (**होदि**) होता है ।

अर्थ – बाह्य-आभ्यन्तर परिग्रह से रहित, शुद्धोपयोग से संयुक्त और मूल एवं उत्तर गुणों से युक्त (योगी) मोक्ष-मार्ग का नेता होता है ।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

साधु सम्यक्त्व की साधना करता है–

जं जादिजरामरणं, दुहदुट्ठविसाहिविसविणासयरं।
सिवसुहलाहं सम्मं, संभावदि सुणदि साहदे साहू ।।१४६।।

अन्वयार्थ – (**जं**) जो (**सम्मं**) सम्यक्त्व (**जादिजरामरणं**) जन्म, जरा, मृत्यु (**दुहदुट्ठविसाहिविसविणासयरं**) दुःखरूपी दुष्ट विषधर सर्प के विष का नाश करने वाला है; (**सिवसुहलाहं**) शिव-सुख का लाभ कराने वाला है (**साहू**) साधु (**संभावदि**) उसी की भावना करता है (**सुणदि**) उसी के बारे में सुनता है और (**साहदे**) उसी की साधना करता है।

अर्थ – जो सम्यक्त्व जन्म-जरा-मृत्यु और दुःखरूपी दुष्ट विषधर सर्प के विष का नाश करने वाला है और मोक्ष-सुख का लाभ कराने वाला है, साधु उसी की भावना करता है, उसी के बारे में सुनता है और उसी की साधना करता है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri
परमात्मा सम्यक्त्व के कारण पूज्य है—

किं बहुणा हो देविंदाहिंद-णरिंद-गणहरिंदेहिं।
पुज्जा परमप्पा जे, तं जाण पहाणसम्मगुणं ॥१४७॥

अन्वयार्थ – **(हो)** हे भव्य! **(बहुणा किं)** बहुत कहने से क्या लाभ है **(जे)** जो **(परमप्पा)** परमात्मा **(देविंदाहिंद-णरिंद-गणहरिंदेहिं)** देवेन्द्र, नागेन्द्र, नरेन्द्र, गणधरेन्द्रों से **(पुज्जा)** पूजित हैं **(तं)** उनमें **(पहाणसम्मगुणं)** सम्यक्त्व गुण की प्रधानता **(जाण)** जानो।

अर्थ – अहो (भव्य)! बहुत कहने से क्या लाभ है। जो परमात्मा देवेन्द्र, नागेन्द्र, नरेन्द्र और गणधरेन्द्रों से पूजित हैं, उनमें सम्यक्त्व गुण की प्रधानता जानो।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

पंचमकाल में उपशम सम्यक्त्व–

उवसम्मइ सम्मत्तं, मिच्छत्तबलेणं पे ल्लदे तस्स ।
परिवट्टंति कसाया, अवसप्पिणी कालदोसेण ।।१४८।।

अन्वयार्थ – (**अवसप्पिणी कालदोसेण**) अवसर्पिणी काल के दोष से (**मिच्छत्तबलेणं**) मिथ्यात्व के उदय से (**तस्स**) जीवों का (**उवसम्मइ सम्मत्तं**) उपशम सम्यक्त्व (**पे ल्लदे**) नष्ट हो जाता है, फिर (**कसाया**) कषाय (**परिवट्टंति**) पुनः उत्पन्न हो जाते हैं ।

अर्थ – (इस) अवसर्पिणी काल-दोष से. मिथ्यात्व के प्रबल उदय से जीवों का उपशम सम्यक्त्व नष्ट हो जाता है; (और फिर) कषाय उत्पन्न हो जाते हैं ।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0. In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

श्रावक की ५३ क्रियाएँ—

गुण-वय-तव-सम-पडिमा-दाणं-जलगालणं-अणत्थमिदं।
दंसण-णाण-चरित्तं, किरिया तेवण्ण सावया भणिदा ।।१४९।।

(उग्गाहा)

अन्वयार्थ – (**गुण**) ८ मूलगुण (**वय**) १२ अणुव्रत (**तव**) १२ तप (**सम**) समता (**पडिमा**) ११ प्रतिमा (**दाणं**) ४ प्रकार के दान (**जलगालणं**) जलगालन (**अणत्थमिदं**) सूर्यास्त के पश्चात् भोजन न करना (**दंसण-णाण-चरित्तं**) सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान, सम्यक्चारित्र (**सावया**) श्रावक की (**तेवण्ण किरिया**) ५३ क्रियाएँ (**भणिदा**) कही गई हैं।

अर्थ – ८ मूलगुण, १२ अणुव्रत, १२ तप, समता, ११ प्रतिमा, ४ प्रकार के दान, जलगालन, सूर्यास्त के पश्चात् भोजन न करना, सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्र—ये श्रावक की ५३ क्रियाएँ कही गई हैं।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

ज्ञान मुक्ति का कारण है–

णाणेण झाणसिद्धी, झाणादो सव्वकम्मणिज्जरणं ।
णिज्जरणफलं मोॅक्खं, णाणब्भासं तदो कुज्जा ।।१५०।।

अन्वयार्थ – (**णाणेण**) ज्ञान से (**झाणसिद्धी**) ध्यान की सिद्धि होती है; (**झाणादो**) ध्यान से (**सव्वकम्मणिज्जरणं**) समस्त कर्मों की निर्जरा होती है; (**णिज्जरणफलं**) निर्जरा का फल (**मोॅक्खं**) मोक्ष है; (**तदो**) अतः (**णाणब्भासं**) ज्ञानाभ्यास (**कुज्जा**) करना चाहिये।

अर्थ – ज्ञान से ध्यान की सिद्धि होती है, ध्यान से समस्त कर्मों की निर्जरा होती है; निर्जरा का फल मोक्ष है; अतः ज्ञानाभ्यास करना चाहिये।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

ज्ञान-भावना से तप, संयम, वैराग्य होता है–

कुसलस्स तवो णिवुणस्स संजमो समपरस्स वेरग्गो ।
सुदभावणेण तत्तिय, तम्हा सुदभावणं कुणह ।।१५१।।

अन्वयार्थ – (**कुसलस्स**) कुशल व्यक्ति के (**तवो**) तप होता है, (**णिवुणस्स**) निपुण व्यक्ति के (**संजमो**) संयम होता है, (**समपरस्स**) समताभावी के (**वेरग्गो**) वैराग्य होता है; और (**सुदभावणेण**) श्रुत की भावना से (**तत्तिय**) ये तीनों होते हैं (**तम्हा**) इसलिए (**सुदभावणं**) श्रुत की भावना (**कुणह**) करो ।

अर्थ – कुशल व्यक्ति के तप होता है । निपुण व्यक्ति के संयम होता है । समताभावी के वैराग्य होता है और श्रुत की भावना से ये तीनों होते हैं; इसलिए श्रुत की भावना करो ।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

मिथ्यात्व से संसार-परिभ्रमण है–

कालमणंतं जीवो, मिच्छत्तसरूवेण पंचसंसारे।
हिंडदि ण लहदि सम्मं, संसारब्भमणपारंभो ॥१५२॥

(चपला)

अन्वयार्थ – (**जीवो**) जीव (**मिच्छत्तसरूवेण**) मिथ्यात्व-स्वरूप होने से (**अणंतं कालं**) अनन्त काल से (**पंचसंसारे**) पंचपरावर्तन रूप संसार में (**हिंडदि**) भ्रमण कर रहा है; किन्तु (**सम्मं**) उसे सम्यक्त्व (**ण लहदि**) प्राप्त नहीं हुआ (**संसारब्भमणपारंभो**) संसार-परिभ्रमण बना हुआ है।

अर्थ – जीव मिथ्यात्व स्वरूप होने से अनन्तकाल से (अनादि काल से) पंचपरावर्तन (द्रव्य, क्षेत्र, काल, भव, भाव) रूप संसार में भ्रमण कर रहा है, किन्तु उसे सम्यक्त्व प्राप्त नहीं हुआ; अतः संसार-परिभ्रमण बना हुआ है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

सम्यग्दर्शन से सुख मिलता है—

सम्मद्दंसणसुद्धं, जाव दु लभदे हि ताव सुही।
सम्मद्दंसण सुद्धं, जाव ण लभदे हि ताव दुही ॥१५३॥

(गाहू)

अन्वयार्थ – **(जाव दु)** जब **(सुद्धं)** शुद्ध **(सम्मद्दंसण)** सम्यग्दर्शन **(लभदे)** प्राप्त कर लेता है **(ताव हि)** तभी **(सुही)** सुखी होता है **(जाव)** जब तक **(सुद्धं)** शुद्ध **(सम्मद्दंसण)** सम्यग्दर्शन **(ण लभदे)** प्राप्त नहीं कर लेता **(ताव हि)** तभी तक **(दुही)** दुखी रहता है।

अर्थ – जब शुद्ध (निर्दोष) सम्यग्दर्शन प्राप्त कर लेता है, (जीव) तभी सुखी होता है। जब तक शुद्ध सम्यग्दर्शन प्राप्त नहीं कर लेता, तब तक (जीव) दु:खी रहता है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri
सम्यक्त्व है तो सब सुख-रूप है–

किं बहुणा वयणेण दु, सव्वं दुक्खेव सम्मत्त विणा।
सम्मत्तेण विजुत्तं, सव्वं सोॅक्खेव जाणं खु ॥१५४॥

अन्वयार्थ – (**बहुणा वयणेण दु**) बहुत कहने से (**किं**) क्या लाभ है (**सम्मत्त विणा**) सम्यक्त्व के विना (**सव्वं**) सब (**दुक्खेव**) दुःख रूप ही है (**सम्मत्तेण**) सम्यक्त्व से (**विजुत्तं**) संयुक्त (**सव्वं**) सब (**सोॅक्खेव**) सुख रूप ही है–यह (**खु**) निश्चय से (**जाणं**) जानो।

अर्थ – बहुत कहने से क्या लाभ है? सम्यक्त्व के बिना सब दुःख रूप ही है (और) सम्यक्त्व से संयुक्त सब सुख रूप ही है, यह निश्चय से जानो।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

सम्यक्त्व-हीन ज्ञान और क्रिया संसार के कारण हैं—

णिक्खेवणयपमाणं, सद्दालंकारछंद लहियाणं।
णाडय पुराण कम्मं, सम्म विणा दीहसंसारं ॥१५५॥

अन्वयार्थ – (**णिक्खेव-णय-पमाणं**) निक्षेप, नय, प्रमाण (**सद्दालंकार**) शब्दालंकार (**छंद**) छन्द (**णाडय**) नाट्यशास्त्र (**पुराण**) पुराण इनका ज्ञान (**लहियाणं**) प्राप्त किया, (**कम्मं**) वाह्य क्रियाएँ कीं; किन्तु ये सव (**सम्म विणा**) सम्यक्त्व के विना (**दीहसंसारं**) दीर्घ संसार के कारण होते हैं।

अर्थ – निक्षेप, नय, प्रमाण, शब्दालंकार, द्वन्द्व, नाट्य शास्त्र, पुराण—इनका ज्ञान प्राप्त किया, बाह्य क्रियाएँ कीं (किन्तु ये सब) सम्यक्त्व के बिना दीर्घ संसार के कारण होते हैं।

 Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0. In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

जबतक ममकार है, तबतक सुख नहीं—

वसदि-पडिमोवयरणे, गणगच्छे समय-संघ-जादि-कुले।
सिस्स-पडिसिस्सछत्ते, सुदजादे कप्पडे पुत्थे ।।१५६।।

पिच्छे-संथरणे इच्छासु लोहेण कुणदि ममयारं।
यावच्च अट्टरुद्दं, ताव ण मुञ्चेदि ण हु सोॅक्खं ।।१५७।।

अन्वयार्थ – (**वसदि**) वसति (**पडिमोवयरणे**) प्रतिमोपकरण (**गणगच्छे**) गण-गच्छ (**समय-संघ-जादि-कुले**) शास्त्र, संघ, जाति, कुल (**सिस्स-पडिसिस्सछत्ते**) शिष्य, प्रतिशिष्य (**सुदजादे**) पुत्र-पौत्र (**कप्पडे**) वस्त्र (**पुत्थे**) पुस्तक (**पिच्छे**) पिच्छी (**संथरणे**) संस्तर (**इच्छासु**) इच्छाओं में (**लोहेण**) लोभ से (**ममयारं**) ममकार (**कुणदि**) करता है और (**यावच्च**) जबतक (**अट्टरुद्दं**) आर्त्त-रौद्र ध्यान है (**ताव**) तबतक (**ण मुञ्चेदि**) मुक्त नहीं होता (**ण हु सोॅक्खं**) न सुख मिलता है।

अर्थ – वसति, प्रतिमोपकरण, गण, गच्छ, शास्त्र, संघ, जाति, कुल, शिष्य, प्रतिशिष्य, पुत्र, पौत्र, वस्त्र (श्रुतपाहुड) पुस्तक, पिच्छी, संस्तर और इच्छाओं में (जबतक) लोभ से ममकार करता है और जबतक आर्त्त-रौद्र ध्यान है, तब-तक मुक्त नहीं होता और न सुख मिलता है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

निर्मल आत्मा ही समय है—

रयणत्तयमेव गणं, गच्छं गमणस्स मॊक्खमग्गस्स ।
संघो गुणसंघादो, समओ खलु णिम्मलो अप्पा ।।१५८।।

अन्वयार्थ — (**मॊक्खमग्गस्स**) मोक्ष-मार्ग में (**गमणस्स**) गमन करने वाले साधु का (**रयणत्तयमेव**) रत्नत्रय ही (**गणं**) गण है (**गच्छं**) गच्छ है (**गुणसंघादो**) गुण-समूह से (**संघो**) संघ है (**खलु**) निश्चय से (**णिम्मलो**) निर्मल (**अप्पा**) आत्मा (**समओ**) समय है ।

अर्थ — मोक्ष-मार्ग में गमन करने वाले साधु का रत्नत्रय ही गण और गच्छ है; गुणों के संघ (समूह) से संघ है और निश्चय से निर्मल आत्मा ही समय है ।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0 In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

सम्यक्त्व कर्मों का नाश करता है–

मिहिरो महंधयारं, मरुदो मेहं महावणं दाहो।
बज्जो गिरिं जहा विणसिज्जदि सम्मं तहा कम्मं ॥१५९॥

(सिहनी)

अन्वयार्थ – (जहा) जैसे (मिहिरो) सूर्य (महंधयारं) गहन अन्धकार को (मरुदो) वायु (मेहं) मेघ को (दाहो) अग्नि (महावणं) विशाल वन को–और (बज्जो) वज्र (गिरिं) पर्वत को (विणसिज्जदि) नष्ट कर देता है (तहा) उसी प्रकार (सम्मं) सम्यक्त्व (कम्मं) कर्मों को–नष्ट कर देता है।

अर्थ – जैसे सूर्य गहन अन्धकार को, वायु मेघ को, अग्नि विशाल वन को और वज्र पर्वत को नष्ट कर देता है. उसी प्रकार सम्यक्त्व कर्मों को नष्ट कर देता है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

सम्यक्त्व दीपक के समान है–

मिच्छंधयाररहिदं, हियमज्झं सम्मरयणदीवकलावं।
जो पज्जलदि स दीसदि, सम्मं लोयत्तयं जिणुद्दिट्ठं ॥१६०॥

अन्वयार्थ – (**जो**) जो (**हियमज्झं**) अपने हृदय में (**मिच्छंधयाररहिदं**) मिथ्यात्व-रूपी अन्धकार से रहित (**सम्मरयणदीवकलावं**) सम्यक्त्व-रूपी रत्नदीप-समूह को (**पज्जलदि**) प्रज्वलित करता है (**स**) वह (**लोयत्तयं**) तीनों लोकों को (**सम्मं**) भलीभाँति (**दीसदि**) देखता है (**जिणुद्दिट्ठं**) जिनेन्द्रदेव ने ऐसा कहा है।

अर्थ – जो अपने हृदय में मिथ्यात्व-रूपी अन्धकार से रहित सम्यक्त्व-रूपी रत्नदीप-समूह को प्रज्वलित करता है, वह तीनों लोकों को सम्यक् प्रकार देखता है, ऐसा जिनेन्द्रदेव ने कहा है।

 Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

पवयणसारब्भासं, परमप्पज्झाणकारणं जाण।
कम्मक्खवणणिमित्तं, कम्मक्खवणे हि मोॅक्खसुहं ।।१६१।।

अन्वयार्थ – (**पवयणसारब्भासं**) प्रवचनसार/आत्मा के शुद्ध स्वरूप का अभ्यास (**परमप्पज्झाणकारणं**) परमात्मा के ध्यान का कारण है (**जाण**) ऐसा जानो; परमात्मा का ध्यान (**कम्मक्खवण-णिमित्तं**) कर्म-क्षय का कारण है (**कम्मक्खवणे**) कर्म-क्षय होने पर (**हि**) निश्चय से (**मोॅक्खसुहं**) मोक्ष-सुख मिलता है।

अर्थ – आत्मा के शुद्ध स्वरूप का अभ्यास परमात्मा के ध्यान का कारण है, ऐसा जानो; (परमात्मा का ध्यान) कर्म-क्षय का कारण है; कर्म-क्षय होने पर निश्चय ही मोक्ष-सुख मिलता है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

धर्मध्यान से कर्मों का क्षय—

धम्मज्झाणब्भासं, करेदि तिविहेण भावसुद्धेण।
परमप्पझाणचेट्ठो, तेणेव खवेदि कम्माणि ।।१६२।।

अन्वयार्थ — जो (**तिविहेण**) मन-वचन-काय से (**भावसुद्धेण**) भाव की विशुद्धिपूर्वक (**धम्मज्झाणब्भासं**) धर्मध्यान का अभ्यास (**करेदि**) करता है—वह (**परमप्पझाणचेट्ठो***) परमात्मा के ध्यान में स्थित हो जाता है (**तेणेव**) उसी से (**कम्माणि**) कर्मों को (**खवेदि**) नष्ट करता है।

अर्थ — (जो) मन, वचन, काय से भाव की विशुद्धिपूर्वक धर्मध्यान का अभ्यास करता है, वह परमात्मा के ध्यान में स्थित हो जाता है। उसी से (परमात्म-ध्यान की अवस्थिति से) वह कर्मों को नष्ट करता है।

* चिट्ठ—स्थित करना। पा. स. म., पृ. ३२५

 Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

काललब्धि का महत्त्व–

अदिसोहण जोएणं, सुद्धं हेमं हवेदि जह तह य।
कालाईलद्धीए, अप्पा परमप्पओ हवदि ॥१६३॥

अन्वयार्थ – (**जह**) जिस प्रकार (**अदिसोहण जोएणं**) अति-शोधन क्रिया से (**हेमं**) स्वर्ण (**सुद्धं**) शुद्ध (**हवेदि**) हो जाता है (**तह य**) उसी प्रकार (**कालाईलद्धीए**) काललब्धि आदि के द्वारा (**अप्पा**) आत्मा (**परमप्पओ**) परमात्मा (**हवदि**) हो जाता है।

अर्थ – जिस प्रकार अतिशोधन क्रिया से स्वर्ण शुद्ध हो जाता है, उसी प्रकार काललब्धि आदि के द्वारा आत्मा परमात्मा हो जाता है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

सम्यक्त्व यथेच्छ सुख देता है–

कामदुहिं कप्पतरुं चिंतारयणं रसायणं परसं* ।
लद्धो भुञ्जदि सोॅक्खं, जहच्छिदं जाण तह सम्मं ।।१६४।।

अन्वयार्थ – जिस प्रकार (**कामदुहिं**) कामधेनु (**कप्पतरुं**) कल्पवृक्ष (**चिंतारयणं**) चिन्तामणि रत्न (**रसायणं**) रसायन (**परसं**) पारसमणि (**लद्धो**) प्राप्त करने वाला मनुष्य (**जहच्छिदं**) यथेच्छित (**सोॅक्खं**) सुख (**भुञ्जदि**) भोगता है (**तह**) उसी प्रकार (**सम्मं**) सम्यक्त्व को (**जाण**) जानो ।

अर्थ – जैसे कामधेनु, कल्पवृक्ष, चिन्तामणि रत्न, रसायन और पारसमणि को प्राप्त करने वाला मनुष्य यथेच्छ सुख भोगता है, उसी प्रकार सम्यक्त्व को जानो ।

---

* परस—पारसमणि — पा. स. म., पृ. ५४८

 Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

रयणसार ग्रन्थ का माहात्म्य—

सम्म णाणं वेरग्ग-तवोभावं णिरीहवित्ति-चारित्तं।
गुणसीलसहावं तह उप्पज्जदि रयणसारमिणं ॥१६५॥

(चपला)

अन्वयार्थ – **(इणं रयणसारं)** यह रयणसार ग्रन्थ **(सम्म)** सम्यग्दर्शन **(णाणं)** ज्ञान **(वेरग्ग)** वैराग्य **(तवोभावं)** तपोभाव **(णिरीह वित्ति)** निरीह वृत्ति **(चारित्तं)** चारित्र **(तह)** तथा **(गुणसीलसहावं)** गुण, शील और आत्मस्वभाव को **(उप्पज्जदि)** उत्पन्न करता है।

अर्थ – यह 'रयणसार' (ग्रन्थ) सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान, वैराग्य, तपोभाव, निरीह वृत्ति, चारित्र, गुण, शील और आत्मस्वभाव को उत्पन्न करता है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

ग्रन्थ की प्रशस्ति–

गंथ मिणं जिणदिट्ठं, ण हु मण्णदि ण हु सुणेदि ण हु पढदि ।
ण हु चिंतदि ण हु भावदि, सो चेव हवेदि कुद्दिट्ठी ।।१६६।।

अन्वयार्थ – (**जिणदिट्ठं**) जिनेन्द्रदेव द्वारा कथित (**इणं गंथ**) इस ग्रन्थ को, जो (**ण हु मण्णदि**) न तो मानता है (**ण हु सुणेदि**) न सुनता है (**ण हु पढदि**) न पढ़ता है (**ण हु चिंतदि**) न चिंतन करता है (**ण हु भावदि**) न भावना करता है (**सो चेव**) वह व्यक्ति (**कुद्दिट्ठी**) मिथ्यादृष्टि (**हवेदि**) है।

अर्थ – जिनेन्द्रदेव द्वारा कथित इस ग्रन्थ को जो न तो मानता है, न सुनता है, न पढ़ता है, न चिन्तन करता है और न भावना करता है, वह मिथ्यादृष्टि है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

उपसंहार—

इदि सज्जण पुज्जं रयणसारगंथं णिरालसो णिच्चं ।
जो पढदि सुणदि भावदि सो पावदि सासदं ठाणं ।।१६७।।

अन्वयार्थ – (**इदि**) इस प्रकार (**सज्जण पुज्जं**) सज्जनों के द्वारा पूज्य (**रयणसारगंथं**) रयणसार ग्रन्थ को (**जो**) जो व्यक्ति (**णिरालसो**) आलस्य-रहित होकर (**णिच्चं**) सदा ही (**पढदि**) पढ़ता है (**सुणदि**) सुनता है (**भावदि**) भावना करता है (**सो**) वह (**सासदं ठाणं**) शाश्वत स्थान/मोक्ष (**पावदि**) पाता है।

अर्थ – इस प्रकार सज्जनों के द्वारा पूज्य 'रयणसार' ग्रन्थ को जो व्यक्ति आलस्य-रहित होकर सदा ही पढ़ता है, सुनता है, भावना करता है, वह शाश्वत स्थान (मोक्ष) पाता है।

इति रयणसार गंथो समत्तो

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

गाहाणुक्कमणिका

अ	गाहा-क्रमांक
अज्जवसप्पिणि भरहे	५४
अज्जवसप्पिणि भरहे	५५
अज्जवसप्पिणि भरहे	५६
अज्झयणमेव णाणं	९०
अणयाराणं वेज्जा	२५
अण्णादीणो विसयविरत्तादो	७०
अप्पाणं पि ण पेंच्छदि	८४
अवियप्पो णिद्दंदो	९६
अविरददेसमहव्वद	११४
असुहादो णिरयाऊ	५७

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

आ	गाहा-क्रमांक
आरंभे धणधण्णे	१०१
इ	
इच्छिद फलं ण लब्भदि	३४
इदि सज्जण पुज्जं	१६७
इंदियविसयसुहादिसु	१२९
इह णियसुवित्तवीयं	१८
उ	
उग्गो तिव्वो दुट्ठो	४३
उदरग्गियसमणमक्ख	१०८
उवसम्मइ सम्मत्तं	१४९
उवसमणिरीह झाणु	११५
उवसमतवभावजुदो	६७
उहयगुणवसणभयमल	८

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

ए	गाहा-क्रमांक
ऍक्कं खणं ण वि चिंतदि	५०
क	
कम्मं ण खवेदि जो पर	८३
कम्माद विहावसहाव	१२३
कामदुहिं कप्पतरुं	१६४
कायकिलेसुववासं	८२
कालमणंतं जीवो	१५३
किं जाणिदूणं सयलं	१२०
किंपायफलं पक्कं	१२७
किं बहुणा वयणेण दु	१५५
किं बहुणा हो तजि	१३६
किं बहुणा हो देविंदा	१४७
कुतवकुलिंगि कुणाणी	४७
कुसलस्स तवो णिवुणस्स	१५२
कोहेण य कलहेण य	११२

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

ख	गाहा-क्रमांक
खयकुट्ठमूलसूला	३६
खाई पूया लाहं	१२२
खुद्दो रुद्दो रुट्ठो	४४
खेत्त विसेसे काले	१७
ग	
गंथमिणं जिणदिट्ठं	१६६
गदहत्थपादणासिय	३५
गुणवयतवसमपडिमा	१५०
गुरुभत्तिविहीणाणं	७८
च	
चउगदिसंसारगमण	१३७
चम्मट्ठिमंसलवलुद्धो	१०६

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

ज

	गाहा-क्रमांक
जस्सकित्ति पुण्णलाहे	२७
जं जादिजरामरणं	१४६
जं जं अक्खाण सुहं	१३०
जंतं मंतं तंतं	२८
जाव ण जाणदि अप्पा	८५
जिण पूया मुणिदाणं	१३
जिणलिंगहरो जोई	१४३
जिण्णुद्धार पदिट्ठा	३२
जे पावारंभरदा	१०४
जेसिं अमेज्झमज्झे	१३१
जोइस वेज्जा मंतो	१०३
जो मुणि भुत्तिवसेसं	२२

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

ण	गाहा-कमांक
णमिदूण वड्ढमाणं	१
णरइ तिरियाइ दुगदी	३७
ण वि जाणदि कज्जमकज्जं	४०
ण वि जाणदि जोग्गमजोग्गं	४१
ण वि जाणदि सिद्धसरूवं	११६
ण सहंति इदरदप्पं	१०५
ण हि दाणं ण हि पूया	३९
ण हु दंडदि कोहादि	६५
णाणब्भासविहीणो	८८
णाणी खवेदि कम्मं	६८
णाणेण झाणसिद्धी	१५१
णिक्खेवणयपमाणं	१५६
णिच्छय ववहार सरूवं	११९
णिय अप्पणाणझाण	१२६

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

गाहा-क्रमांक

णियतच्चुवलद्धि विणा ८६
णियसुद्धप्पणुरत्तो ६
णिंदावंचणदूरो १५

त

तच्चवियारण सीलो १३
तणु कुट्ठी कुलभंगं ४८
तिव्वं कायकिलेसं १७

द

दव्वगुणपज्जयेहिं १३९
दव्वत्थिकाय छप्पण ६०
दंडत्तय सल्लत्तय ९९
दंसण सुद्धो धम्मज्झाणरतो ११७
दाण ण धम्म ण चाग ण १२

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

दाणं पूया मुक्खं ११
दाणं पूयासीलं १०
दाणीणं दारिद्दं २९
दाणं भोयणमेत्तं १५
दिण्णदि सुपत्तदाणं १६
दिव्वुत्तरणसरिच्छं ११३
देवगुरुधम्मगुण ४९
देवगुरुसमयभत्ता ९
देहकलत्तं पुत्तं १२८
देहादिसु अणुरत्ता १००

ध

धणधण्णादि समिद्धे ३०
धम्मज्झाणब्भासं १६३
धरियउ बाहिरलिंगं ६४

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

प

गाहा-क्रमांक

पत्त विणा दाणं च	३१
पदि भत्ति विहीण सदी	७७
पवयणसारब्भासं	१६२
पावारंभणिवित्ती	९१
पिच्छे संथरणे इच्छासु	१५८
पुत्तकलत्त विदूरो	३३
पुव्वं जिणेहि भणिदं	२
पुव्वं जो पंचिंदिय	७६
पुव्वट्ठिद खवदि कम्मं	५२
पुव्वं सेवदि मिच्छा	६९
पूय फलेण तिलोक्के	१४
पूयसूयरसणाणं	१३२

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

ब	गाहा-क्रमांक
बहिरब्भंतर गंथ	१४५
बहिरंतरप्पभेदं	१४०
बहुदुक्खभायणं	११०
भ	
भयवसणमलविवज्जिद	५
भुञ्जेदि जहालाहं	१०७
भुत्तो अयोगुलोसइयो	१४८
भू महिला कणयादि	७५
म	
मक्खी सिलिम्मि पडिदो	८८
मदमूढमणायदणं	७
मदिसुदणाणबलेण दु	३
मलमुत्तघडव्वचिरं	१३४
मादु पिदु पुत्त मित्तं	१९
मिच्छं धयाररहिदं	१६१

 Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

	गाथा क्रमांक
मिच्छामदिमदमोहा	५१
मिस्सो त्ति बाहिरप्पा	१४१
मिहिरो महंधयारं	१६०
मूढत्तय सल्लत्तय	१४२
मूलुत्तरुत्तरुत्तर	१२४
मोक्खगदिगमणकारण	१३८
मोक्खणिमित्तं दुक्खं	६५
मोह ण छिज्जदि अप्पा	६३
र	
रज्जं पहाणहीणं	७९
रयणत्तय करणत्तय	१४३
रयणत्तयमेव गणं	१५९
रयणत्तयस्सरूवे	६१
रसरुहिरमंसमेदं	१०९
रायादि मलजुदाणं	९७

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

ल	गाहा-क्रमांक
लोइयजणसंगादो	४२
व	
वत्थुसमग्गो णाणी	७४
वत्थुसमग्गो मूढो	७२
वयगुणसीलपरीसह	१२१
वसदि पडिमोवयरणे	१५७
वाणरगद्दहसाणगय	४५
विकहादि विप्पमुक्को	९४
विकहादिसु रुद्दट्ट	५९
विणओ भत्तिविहीणो	७१
विसयविरत्तो मुञ्चदि	१२५
स	
संघविरोह कुसीला	१०२
संजमतवझाणज्झयण	१११

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

	गाहा-क्रमांक
सत्तंगरज्जणवणिहि	२०
सप्पुरिसाणं णाणं	२६
सम्मणाणं वेरग्गतवो	१६५
सम्मत्तगुणाइसुगदी	६२
सम्मत्तरयणसारं	४
सम्मद्दंसण सुद्धं	१५४
सम्म विणा सण्णाणं	४६
सम्म विसोही तवगुण	३८
सम्माण विणारुइ	८०
सम्मादिगुणविसेसं	११८
सम्मादिट्ठी कालं	५३
सम्मादिट्ठी णाणी	१३५
साल विहीणो राओ	८७
सिविणे वि ण भुञ्जदि	१३३

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

	गाहा-क्रमांक
सीदुण्ह वाय पिउलं	२३
सुकुल सुरूव सुलक्खण	२१
सुदणाणब्भासं जो	९२
सुहडो सूरत्त विणा	७२

ह

हिदमिदमण्णं पाणं	२४
हिंसादिसु कोहादिसु	५८
हीणादाण वियार	८१

□□

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

श्री वीर निर्वाण ग्रन्थ प्रकाशन समिति, इन्दौर

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi